मन के जीते जीत

स्वेट मार्डेन

मन के जीते जीत

डॉ० ओरिसन स्वेट मार्डेन की प्रसिद्ध कृति
"पीस, पावर एण्ड प्लेंटी' का भारतीय रूपान्तर

रूपान्तरकार
सन्तराम वत्स्य

मूल्य : चार रुपये

प्रथम संस्करण, १९६९
आवरण : नारायण

० ०

प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२/३५, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली–६

मुद्रक : हरि मुद्रण प्रतिष्ठान, द्वारा
कुकरेजा प्रेस, दिल्ली–३२]

दो शब्द

मेरे निजी पुस्तक-संग्रह में एक पुस्तक पर गहरे लाल मखमल की जिल्द चढ़ी हुई है। जब भी अलमारी को खोलता हूं यह पुस्तक सबसे अलग दिखाई देती है और ध्यान आकर्षित करती है। इस पुस्तक की और इसकी जिल्द की भी अपनी कहानी है। वही संक्षेप में आपको सुनाने लगा हूं।

इसे मेरा सौभाग्य ही कहिये कि जीविका के लिए मैंने पुस्तकों की दुकान में एक साधारण कर्मचारी के रूप में काम शुरू किया था। फटी-पुरानी पुस्तकों के ढेर की सफाई करते हुए, दीमक द्वारा कुछ क्षतिग्रस्त एक पुस्तक पर मेरी दृष्टि गई। स्पष्ट है कि यह पुस्तक बिकने योग्य नहीं थी और खराब पुस्तकों के ढेर में डाल दी गई थी। मैंने अपने स्वभाव के अनुसार पुस्तक के लेखक का नाम देखा और उसकी विषय-सूची पढ़ डाली। मैं लेखक के नाम से परिचित ही नहीं था अपितु वह मेरा प्रिय लेखक भी था। मैंने पुस्तक अलग रख ली और स्वीकृति लेकर घर ले गया। यह घटना १९४६ ई० की है। भारत-विभाजन के समय जब लाहौर छोड़ना पड़ा तो यह पुस्तक कांगड़ा की सीमा पर स्थित मेरे गांव जा पहुंची और कई साल के बाद दिल्ली आयी।

मैं जब किसी पुस्तक को बहुत पसन्द करता हूं तो उसे मित्रों को पढ़ाने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। इस आदत के कारण यद्यपि मैंने अपनी कुछ प्रिय पुस्तकें खो दी हैं पर अब भी यह स्वभाव वैसा ही बना हुआ है।

कोई तीन वर्ष पूर्व मेरे एक सहकर्मी और मित्र बीमार पड़ गए। उनका रोग शारीरिक कम, मानसिक अधिक था। उनका ऐसे-से हुआ, वह साफ था पर वहम का क्या इलाज! मुझे ध्यान आया और मैंने

उपर्युक्त पुस्तक उनको पढ़ने के लिए दी। पुस्तक उन्होंने पढ़ी और उनका मानसिक स्वास्थ्य ठीक होते ही शारीरिक स्वास्थ्य भी सुधर गया। उन्हीं मित्र ने पुस्तक के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिए यह मखमल की जिल्द बन्धाकर पुस्तक मुझे लौटा दी। और यह उसी पुस्तक का भारतीय रूपान्तर आपके हाथ में है।

रूपान्तर के सम्बन्ध में भी किंचित स्पष्टीकरण आवश्यक समझता हूं। मैंने मूल भाव की सुरक्षा करते हुए विषय का संक्षेप और विस्तार किया है। पुनरावृत्ति वाले स्थलों को काटा है। कथ्य के समर्थन में भारतीय उद्धरणों का उपयोग किया है, जिससे पुस्तक भारतीय पाठकों के लिए अधिक उपयोगी और प्रभावकारी बन सके। इस प्रकार यह रूपान्तर अनुवाद मात्र नहीं है, भावानुवाद जैसा है।

यह पुस्तक प्रथम बार जब अमेरिका में प्रकाशित हुई थी तो इतनी पसन्द की गई कि दो वर्ष तक प्रतिमास इसकी आवृत्तियां प्रकाशित होती रहीं। फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी में जो आवृत्तियां निकलीं वे अलग।

ओरिसन स्वेट मार्डेन इस विषय के भारतीय पाठकों के सुपरिचित लेखक हैं और प्रायः उनकी सभी पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं और पाठकों में लोकप्रिय हुए हैं। इन पुस्तकों की गणना उस कोटि की पुस्तकों में की जाती है जिन्हें एक बार पढ़कर रख नहीं दिया जाता। विचारों और भावनाओं का उदात्तीकरण करके सर्वतोमुखी उन्नति के आधार चरित्र को इनसे बल मिलता है और पाठक जीवन के उस सत्य को पा लेता है जो स्थायी आनन्द का आधार है। व्यक्ति और समाज का जो शाश्वत सम्बन्ध है वह स्पष्ट हो जाता है और व्यक्ति आत्मोन्नति के साथ-साथ समाज का भी हितसाधक बन जाता है।

आज के नवयुवकों को इस प्रकार का साहित्य पढ़ाने की सर्वाधिक आवश्यकता है। सस्ते कुरुचिपूर्ण जासूसी और वासनापूर्ण उपन्यासों की अपेक्षा यदि ये पुस्तकें उन्हें पढ़ने को मिलें तो निश्चय ही एक भीषण समस्या का समाधान हो सकता है।

—सन्तराम बत्स्य

क्रम

शरीर और मन	९
आरोग्य का रहस्य	२१
दरिद्रता	२७
सम्पन्नता	४२
निद्रा	५०
मानसिक अवस्था और आरोग्य	५९
मानस चिकित्सा	६५
कल्पना-शक्ति और स्वास्थ्य	७४
स्वास्थ्य पर विचारों का प्रभाव	८१
बुढ़ापे से बचिये	८७
आत्म-विश्वास	९४
दृढ़ निश्चय	१०९
आत्मा की आवाज : मानसिक सूचना	११५
मानसिक चिन्ता	१२३
भय	१३२
आत्म-संयम	१४०
प्रसन्नता	१४६
दुःख को भूल जाइये	१५१
जैसा बोओगे, वैसा काटोगे	१५८

१

शरीर और मन

धर्म, अर्थ काम और मोक्ष ये सब शरीर द्वारा ही साध्य हैं ।
—भाव प्रकाश

मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। —गीता

मन सब कुछ है, जो कुछ हम सोचते हैं हो जाते हैं। — बुद्ध

हमारा यह शरीर हमारे मन को ढकने और उसकी रक्षा करने वाला ऊपरी आवरण है। वैसे ही जैसे कछुए का ऊपरी आवरण उसके शरीर के साथ घनिष्ठ सम्बन्धित होता है, मन और शरीर में भी किसी प्रकार का भेद नहीं है। केवल रूप का भेद है। जब यह बात भली प्रकार हमारी समझ में आ जाती है तब हम यह भी भली प्रकार समझने लगते हैं कि मन और शरीर का एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है? हमारे जड़ शरीर की रचना जड़ और दृश्य तत्त्वों से हुई है। उन्हीं तत्त्वों के सूक्ष्म और दिखाई न पड़ने वाले स्वरूप से हमारे सूक्ष्म शरीर की रचना हुई है। इसलिए इन दोनों में भी केवल इतना ही अन्तर है कि एक दिखाई देता है और दूसरा दिखाई नहीं देता। यह बात एक उदाहरण द्वारा और भी स्पष्ट हो जाएगी। पानी का साधारण रूप जड़ और दिखाई देने वाला होता है, किन्तु उसका एक दूसरा रूप भी है जो सूक्ष्म अतएव न दिखाई देने वाला है। इसे हम भाप कहते हैं। पानी और भाप का यह भेद गुण में नहीं केवल स्वरूप में है। यही बात हमारे स्थूल और सूक्ष्म शरीर के बारे में भी है। दोनों के गुण में कोई भेद नहीं है।

भेद है तो केवल स्वरूप में। यही कारण है कि शरीर का मन पर प्रभाव पड़ता है। जब शरीर रोगी होता है तो मन भी रोगी हो जाता है। और जब हमारा मन दुखी या चिन्तित होता है तो उसका प्रभाव शरीर पर स्पष्ट दिखाई देने लगता है। प्राय: लोगों को कहते सुना जाता है कि इस समय मैं यह काम नहीं कर सकता, मेरा मन ठीक नहीं है।

सरकस में करतब दिखाने वाले खिलाड़ियों का यह अनुभव है कि शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा या अन्य कष्ट होने पर जब वे साधारण चलने-फिरने में भी कठिनाई अनुभव करते हैं तब भी जब उन्हें रंगशाला में आकर दर्शकों के सामने आना पड़ता है और वहां आकर वे बैंड बजता सुनते हैं तो उस समय वे अपनी पीड़ा और अन्य कष्ट भूलकर अनेक प्रकार के ऐसे शारीरिक कौशल दिखाते हैं जिन्हें दिखाने में शरीर को काफी श्रम करना पड़ता है। किन्तु क्योंकि उतनी देर के लिए मन से यह विचार बिलकुल निकल जाता है कि हम अस्वस्थ हैं, उस समय उनके मन में केवल एक और एक विचार होता है कि हम अच्छे से अच्छे ढंग से कौशल दिखाएं। दर्शकों की हर्ष-ध्वनि और तालियां उन्हें भाव-विभोर कर देती हैं और कोई दूसरा विचार उनके मन को छू भी नहीं पाता, छू भी नहीं सकता।

अपने काम के प्रति सच्चा प्रेम, महत्वकांक्षा और दर्शकों का प्रोत्साहन सब मिलकर उन्हें शारीरिक कष्ट को भूलकर, अच्छे से अच्छे ढंग से कार्य-कौशल दिखाने के लिए प्रेरित करते हैं।

हमारी इच्छा हो या न हो पर आवश्यक और गुरुतर कार्यों में इतनी शक्ति होती है कि उनके सामने हमारे साधारण शारीरिक कष्ट, चाहे कुछ देर के लिए ही सही पर लुप्त अवश्य हो जाते हैं। जीवन में कभी-कभी ऐसे प्रसंग भी आते हैं जब हम यह सोचते हैं कि यदि अमुक विपत्ति का सामना हमें करना पड़ा तो पार पाना असंभव होगा। पर जब वही विपत्ति हमारे ऊपर आ पड़ती है तो हम उसका पूरे तौर पर सामना करते हैं। और कई बार उससे पार पाने में सफल भी हो जाते हैं। ऐसे ही क्षणों में मन की उस विराट् और अमोघ शक्ति का अनुभव हमें होता है और यह शक्ति कुछ गिने-चुने ही लोगों के पास होती है, यह बात भी

नहीं। उसका स्वामी तो हममें से प्रत्येक है। हम में से प्रत्येक के भीतर एक न दिखाई देने वाली और प्राय: सोती हुई एक महान शक्ति रहती है। उसकी तुलना हम लकड़ी में छिपी अग्नि से कर सकते हैं। लकड़ी के प्रत्येक टुकड़े में आग होती है पर सोई हुई अवस्था में। उसे हम जगा और जला सकते हैं कुछ प्रयत्न-पुरुषार्थ करके। मनुष्य की यही शक्ति आड़े-टेढ़े अवसरों पर हड़बड़ा कर जाग उठती है और संकटों से उसकी रक्षा करती है। उसीके बल पर कभी-कभी कुछ लोग ऐसे-ऐसे कठिन कार्यों को कर दिखाते हैं जिनके करने की उनसे आशा और अपेक्षा कोई भी नहीं कर सकता था और जो उनके बस के नहीं समझे जाते थे।

यदि ध्यान पूर्वक देखें तो हम इस निश्चय पर पहुंचेंगे कि जिन लोगों की नियुक्ति अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्यों पर होती है और जिनकी अनुपस्थिति से बहुत हानि हो सकती है, वे छोटी-छोटी बातों और कष्टों को लेकर कभी भी अनुपस्थित होते नहीं देखे गए। साधारण नौकरी-पेशा लोग शुरू के दिनों में तो छुट्टियों के लिए उतावले होते देखे जाते हैं किन्तु ज्योंहि अपने कार्य के प्रति उनके मन में सच्चा प्रेम उत्पन्न हो जाता है तो छुट्टियों से वे बिलकुल उकता जाते हैं और यह अनुभव करने लगते हैं कि घर में निठल्ले बैठने से तो काम में लगे रहना ही अच्छा है। आलसी और दरिद्री लोग बेकार पड़े रहने पर जिस सुख का अनुभव करते हैं, काम-काजी काम करने में उससे भी अधिक वास्तविक सुख पाते हैं। प्रत्येक कामकाजी आदमी खाली रहने पर कष्ट का अनुभव करता है।

काम में यह तन्मयता ही कर्म-समाधि है। कर्मयोगी को दोहरा लाभ होता है। एक तो काम से होने वाला लाभ और दूसरा भली प्रकार किए गए काम से होने वाली प्रसन्नता का लाभ। क्या कोई इस प्रसन्नता लाभ की कीमत दे सकता है। यह तो अमूल्य है, अनुपम है।

कर्मठ व्यक्तियों के जीवन में ऐसे अनेक अवसर उपस्थित होते हैं कि यदि वैसे ही अवसर किसी आलसी और कामकाज से भागने वाले व्यक्ति के जीवन में आएं तो वह अपने को बीमार बताकर बिस्तर पर पड़ा रहे और डाक्टरों-हकीमों के द्वार खटखटाए। किन्तु कर्मठ व्यक्तियों के मन और शरीर पर उनके कार्य की गुरुता और उनकी कर्त्तव्य-परायणता

के कारण ऐसी साधारण बातों—छोटे-मोटे कष्टों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सानफ्रांसिसको (अमेरिका) नगर में एक बार भीषण भूकम्प आया था। इस भीषण भूकम्प से अपार जन-धन का नाश हुआ था। उस समय उस नगर में एक ऐसा रोगी व्यक्ति था जो पन्द्रह वर्षों से भयानक रोग से पीड़ित था। चलना-फिरना तो दूर रहा, बिस्तर पर करवट बदलना भी उसके लिए असम्भव था। पर भूकम्प का पहला धक्का लगने पर वह हड़बड़ाकर बिस्तर से उठकर घर से बाहर हो गया। क्या आप बता सकते हैं कि अपने आप बिस्तर पर करवट तक न बदल सकने वाले रोगी में यह विलक्षण परिवर्तन कैसे हो गया, कैसे वह उठकर चल-फिर सका और अपने प्राण बचा सका। यदि वह उठकर बाहर न निकल गया होता तो मकान गिरने से दब कर मर जाता। इस भूकम्प के समय उस नगर में और भी कई इस प्रकार की घटनाएं घटित हुई थीं। कुछ ऐसे रोगियों ने जो बिल्कुल अशक्त थे, न केवल स्वयं बच निकले अपितु अपने बाल-बच्चों को तथा सामान को भी बचाया। यह अद्‌भुत और विलक्षण शक्ति जिसके द्वारा यह सारे कार्य हुए हमारे भीतर से ही उत्पन्न हुई थी। ऐसी अनेक घटनाएं प्रायः सुनने में आती हैं कि अमुक स्त्री ने एक भयंकर डाकू को मार डाला और अमुक गांव की स्त्री ने बाघ से लड़ाई की। यह सब कार्य उसी महान शक्ति के द्वारा होते हैं।

जब तक कोई बलवान् शत्रु या कोई महान् संकट या कठिन परिस्थिति हमारे सामने उपस्थित नहीं होती तब तक हमें अपनी सामार्थ्य और सहनशीलता का सही-सही अनुमान नहीं लग पाता। पतिपरायणा स्त्री और ममतामयी माता अपने पति और बच्चे की मृत्यु की कल्पना करते भी घबराती है। निश्चय ही वह समझती है कि यदि इनमें से किसी की भी मृत्यु हुई तो वह जीवित नहीं रह सकती। किन्तु यह देखा गया है कि पति की मृत्यु पर न तो पत्नी के प्राण निकलते हैं और न बच्चे की मृत्यु पर माता के। तो क्या वह यह बात झूठ-मूठ कहती थी? नहीं, ऐसी बात नहीं है। उसे अपनी सहनशीलता—सामर्थ्य का सही-सही अनुमान नहीं था।

अनेक रोगों में रोगी की अवस्था ऐसी भयंकर हो जाती है कि देखने

वाले सोचने लगते हैं कि इसके प्राण कहां रुके हुए हैं। यह इस कठोर यातना को कैसे सह रहा होगा ? ऐसे जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी। ऐसी अवस्था में रोगियों को एक बार देख लेने पर, उनका हृदय-विदारक चित्र आंखों के आगे से हटता ही नहीं। वह देखने वाले को चिन्तित और उदास भी बना देता है। रोगी के दुख की कल्पना से उसे रोमांच हो आता है। परन्तु वैसा ही कोई रोग, कोई विपत्ति अपने ऊपर आ पड़ती है तो आदमी उसे जैसे-तैसे चुपचाप सहन कर ही लेता है। अभिप्राय यह कि मनुष्य-मात्र के भीतर इतनी अधिक सामर्थ्य होती है कि चाहे कितना ही कठिन अवसर क्यों न आ पड़े, वह उसे जैसे-तैसे निबटा ही लेता है।

भावी संकट कभी उतना भयंकर नहीं होता, उसके जितना भयंकर होने की कल्पना हम पहले से ही किये रहते हैं। भावी संकट का यह अतिरंजित कल्पना-चित्र भयानक चिन्ता को जन्म देता है। और चिन्ता इतनी हानिकारक होती है कि कुछ मत पूछिए। संकट आ पड़ने पर क्या होगा ? कैसे उससे पार पाएंगे ? इत्यादि मन की दुर्बलता के द्योतक अनिश्चय न केवल स्वास्थ्य और सुख का ही नाश करते हैं अपितु सर्वनाश का भी कारण बनते हैं। विपत्ति का वास्तविक भय और दुःख स्वयं विपत्ति में नहीं होता, वह तो उसके सम्बन्ध में की जाने वाली कल्पना और मन की डांवाडोल स्थिति में होता है।

वह कहानी आपने अवश्य ही सुनी होगी कि मार्ग में एक पथिक को भयानक पिशाचनी मिली और पूछने पर उसने बताया कि मैं अमुक नगर को जा रही हू और वहां एक सौ लोगों के प्राण लूंगी। वह उस नगर में हैजे की बिमारी के रूप में प्रकट हुई और कई सौ व्यक्ति मर गए। वह जब लौटकर जा रही थी तो फिर वही व्यक्ति मिला और उसने पूछा कि तुम तो कह रही थीं कि मैं केवल सौ आदमियों के प्राण लूंगी, किन्तु उस नगर में तो कई सौ आदमी मर गए। तो उसने उत्तर दिया था कि मैंने तो केवल सौ के ही प्राण लिए हैं शेष लोग तो बीमारी के भय से ही मर गए।

कठिन से कठिन परिस्थितियों और विपत्तियों को सहन करने की सामर्थ्य देने वाली यह अकथनीय और अज्ञात शक्ति हमारे दैवी और

सूक्ष्म स्वरूप का ही एक लक्षण है। और वह मनोमय है। बाहर कहीं नहीं।

आज का युग जिसे विज्ञान का युग कहा जाता है और जिसके द्वारा मनुष्य की सुविधा के अनेक साधन जुटाए जा रहे हैं, ऐसे इस सर्वप्रशंसित युग में और चाहे जितने ही गुण हों किन्तु इसका सबसे बड़ा दोष, अवगुण यह है कि दैवी शक्ति या ईश्वर की सत्ता पर से मनुष्य मात्र का विश्वास उठता जा रहा है। आज उस अमोघ शक्ति का हम नाश करते जा रहे हैं जो दुःखों, रोगों और विपत्तियों में भी हमें धैर्य पूर्व सामना करने के लिए प्रेरित करती थी।

आजकल बड़े-बड़े नगरों और बड़े-बड़े भवनों में रहने वालों में एक नया फैशन चल पड़ा है। वह यह कि बीमार पड़े रहने अथवा बने रहने में अपना बड़प्पन समझते हैं। ऐसे महानुभाव पहले तो यह अनुभव करने लग जाते हैं कि आज तबियत कुछ ठीक नहीं है। फिर वे अपने माथे पर हाथ रखकर देखते हैं कि कुछ गरम तो नहीं है, फिर वे सोचते हैं कि थोड़ी देर तक ज्वर होने वाला है। इस प्रकार कल्पना करते, डरते-डरते बीमार बन ही जाते हैं। और जब बीमार बन ही गए तो कुछ दवा-दारू भी होनी चाहिए। आजकल नगरों में डाक्टरों-वैद्यों की तो भरमार है ही। झट किसी डाक्टर के पास पहुँचे और बता दिया कि तबीयत कुछ भारी-भारी है, रात नींद भी ठीक से नहीं आई थी, सिर में कुछ हल्का-सा दर्द है, और तीन-चार खुराक दवाई लेकर आ गए। यह दवाई खाने की बीमारी, और दवाई खाने से जो बीमारी बढ़ती जा रही है, इस की दवाई क्या करें, समझ नहीं आता। ज्यों-ज्यों डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों की और दवाइयों की संख्या बढ़ती जा रही, त्यों-त्यों बीमारियाँ भी बढ़ रही हैं। रोग-निवारण के सुमीते जिस परिमाण में बढ़ रहे हैं, उसी परिमाण में हम रोग-निवारण में पराश्रित होते जा रहे हैं। हम रोग उत्पन्न होने के कारणों को कभी खोज ही नहीं करते, खोज करने की आवश्यकता ही नहीं समझते। युक्त आहार-विहार और संयम की ओर कोई ध्यान भी नहीं देता। आज के युग में यह सब बे-मतलब की बातें हो गई हैं। रोगों को रोकने और दूर करने के लिए जिस शारीरिक और

मानसिक शक्ति की अपेक्षा होती है, उसका दिन-प्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है।

ज्ञान के विकास और प्रसार के इस युग से पहले इतने डाक्टर-वैद्य कहाँ थे ? ग्रामीण क्षेत्रों में तो आठ-दस कोस पर कोई वैद्य होता था। उस समय की चिकित्सा भी आज की तरह जटिल और महंगी न थी। कुछ स्थानीय जड़ी-बूटियाँ ही कूट-छानकर या उबालकर दी जाती थीं और रोगी ठीक हो जाते थे।

आज कल बहुत-से देशों में ऐसी बहुत-सी जातियाँ हैं, जो जंगलों में रहती हैं और आज की सभ्यता से अछूती हैं। इनमें सभी देशों के आदिवासी सम्मिलित हैं। इन जातियों में शिक्षा नाम मात्र को भी नहीं है। ज्ञान और विज्ञान से बहुत दूर हैं। उनमें न एम० बी० बी० एस० डाक्टर होते हैं न सर्जन, न हकीम न वैद्य। उनमें से ही कोई बड़ा-बूढ़ा कुछ इनी-गिनी जंगली जड़ी-बूटियों के द्वारा उन सब की चिकित्सा विषयक आवश्यकताओं को पूरा कर देता है। चिकित्सा विषयक उनका ज्ञान जितना कम है, उतने ही उन्हें रोग भी कम सताते हैं। आज का अत्यन्त उन्नति प्राप्त हमारा चिकित्सा शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान भी कई बातों के बारे में उनका मुकाबला नहीं कर सकता। इन जंगल वासियों को प्रायः साँप, बिच्छू आदि विषैले जन्तु काटा करते हैं। ऐसे रोगों पर उनकी दवाइयां रामबाण का काम करती हैं। दूसरे प्रकार के रोग एक तो उन्हें होते ही बहुत कम हैं और यदि होते भी हैं तो प्रकृति अपने इन प्यारे पुत्रों के रोगों का शीघ्र ही शमन कर देती है। उनका स्वाभाविक प्राकृत जीवन ही उनके अच्छे स्वास्थ्य का कारण है। पशु-पक्षी जो स्वाभाविक प्राकृतिक जीवन बिताते हैं, उनकी चिकित्सा भी प्रकृति ही करती है।

बिना बात और ज़रा-सी बात के लिए डाक्टरों-हकीमों के पास बार-बार जाने की आदत लोगों में दिनों-दिन जोर पकड़ती जा रही है। आज के युवकों और बालकों में शारीरिक शक्ति का जो चिन्तनीय अभाव दिखाई देता है, उसके कारणों में से यह एक प्रमुख कारण है। घर में किसी बच्चे को एक छींक आ गई या ज़रा-सा माथा गरम हो

गया तो माता-पिता भागे-भागे डाक्टर के पास जाते हैं। जब तक वे दो-चार दवाइयाँ न खिला लें, उन्हें सन्तोष नहीं होता। घर में भड़कीले नामों और चमकीले लेबिलों वाली पेटेंट दवाइयों को रखना भी एक फैशन बन गया है। कुछ माताएँ तो दूसरों की देखा-देखी बच्चों को दवाइयाँ पिलाना शुरू कर देती हैं। फिर वे उन दवाइयों से मोटे होने की बजाय भले ही दुबले हो जाएँ। इन दवाइयों को पिलाने के पूर्व के कुछ ऐसी बीमारियों के आरोप बच्चों पर कर लेती हैं, जो उन्हें बिलकुल नहीं होतीं। कोई कहती है कि मेरा बच्चा दूध नहीं पीता, दूसरी कम दूध पीने की शिकायत करती है और तीसरी के बच्चों को दूध हजम नहीं होता, चौथी के बच्चे को क्योंकि मां का दूध पर्याप्त नहीं मिलता इसलिए दूध की कमी दवाई से पूरी की जाती है। इस प्रकार के अनेक कारण दवाई के लिए ढूंढ़ लिए जाते हैं। यही नहीं, कुछ माताएँ तो यह समझती हैं कि यदि कोई दवाई बच्चे को न पिलाएँगी तो पास-पड़ोस की स्त्रियाँ हमारी योग्यता में कमी समझने लगेंगी। परिणाम यह होता है कि बालक शुरू से ही रोगों, दवाइयों और डाक्टरों की छत्रछाया में पलने और बढ़ने लगता है। उसका शरीर दवाइयों का अभ्यस्त हो जाता है। इसका कुपरिणाम उसे आगे चलकर भुगतना पड़ता है।

भविष्य में ऐसा समय भी आएगा जब कि मात-पिता बालकों को व्यर्थ ही, झूठी चिन्ता के कारण अथवा लोगों की देखा-देखी करने की इच्छा के कारण समय-कुसमय दवाई देने में लज्जा का अनुभव करने लगेंगे। ऐसा भी समय आएगा जब बालकों का लालन-पालन स्वस्थ विचारों के शिक्षित माता-पिताओं द्वारा प्रेम और सत्य के वातावरण में होगा। वे बालकों को सद् विचारों और स्वास्थ्य वर्द्धक दैनिक आहार-विहार और आचार का महत्त्व ठीक से समझा दिया करेंगे। तब डाक्टरों-हकीमों के पास जाने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी।

यह समझना कि परमपिता परमात्मा अपने पुत्रों का स्वास्थ्य, सुख और जीवन केवल डाक्टरों और वैद्यों के भरोसे से छोड़ देता है कितनी अविवेक पूर्ण बात होगी।

हम सब यह मानते हैं कि हम अर्थात् मनुष्य ईश्वर की सृष्टि के

सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं। हमारी रचना में उसने अपना सारा कौशल लगा डाला है। ऐसे अवस्था में यह समझना कैसी मूर्खता है कि इस सर्वश्रेष्ठ प्राणी का स्वास्थ्य और जीवन किसी जड़ी-बूटी या दवाइयों के किसी घोल पर या ऐसे ही किसी अन्य क्षुद्र पदार्थ पर अवलम्बित है। ऐसा सोचकर हम न केवल अपने स्वास्थ्य, समय और धन का नाश करते हैं अपितु भगवान का भी अपमान करते हैं। निश्चय ही उसने अपनी सृष्टि के इस सर्वश्रेष्ठ प्राणी को इतना परावलम्बी, निष्ठुर भाग्य का दास या केवल जड़ी-बूटियों के सहारे जीने वाला नहीं बनाया है। उसके स्वयं के भीतर ही वह शक्ति भी दे रखी है, जो सब कष्टों, दुःखों और रोगों से उसका बचाव कर सके। और वह शक्ति मनोमय है।

कोई कारण समझ नहीं आता कि रोगों को दूर करने की औषधि मनुष्य के शरीर में न रखकर उसने किसी जगल में, पृथ्वी के किसी कोने में छिपाकर रख दी हो और जिसका किसी को कुछ अता-पता भी न हो। नहीं, कदापि नहीं। ऐसा नहीं हुआ है। ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा होने से तो उसकी सर्वज्ञता, उसकी वत्सलता, दयालुता और दूर-दर्शिता सभी बेकार की चीज होती। उस दयामय ने अपनी असीम दया के कारण मनुष्य के वास्तविक और सच्चे सुखों के साधन, बाहर कहीं न रखकर, उसके शरीर में ही गुप्त रूप से रख दिए हैं और इन्हें जानने के लिए मनुष्य को विवेक और बुद्धि भी दे दी है। भले-बुरे में विवेक करने वाली विशुद्ध बुद्धि द्वारा वह उक्त साधनों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, और उन साधनों के प्रयोग और उपयोग द्वारा वह स्वास्थ्य, सुख और शान्ति लाभ कर सकता है। सुख प्राप्ति का यह मार्ग उसके लिए खुला हुआ है। फिर भी देखने में आता है कि बहुत-से लोग ऐसी प्रकृति के होते हैं जो अपने भीतर होने वाले इन साधनों की जानकारी प्राप्त करने का यत्न नहीं करते। इस के विपरीत ऐसा भी होता है कि कुछ लोग इन साधनों की जानकारी प्राप्त कर लेने पर कुविचार के कारण या जानते-बूझते हुए भी दुरुपयोग करते हैं। इन साधनों का दुरुपयोग मनुष्य को विनाश की ओर ले जाता है।

मनुष्य मात्र में एक ऐसी दैवी शक्ति निवास करती है जिसे न तो

कभी बुढ़ापा आता है न ही मौत। वह निर्विकार और नित्य है। यदि उस शक्ति का भली प्रकार विकास किया जाए तो वह दोनों प्रकार के दुःखों—शारीरिक और मानसिक—का नाश कर देती है। आवश्यकता इस बात की है कि अपने इस स्वरूप को पहचानें। इस स्वरूप के परिचय मात्र से संसार के सभी दुःखों और कष्टों पर विजय प्राप्त हो जाएगी।

हम सबके देखने में आता है कि किसी विशेष समारोह पर उसका आयोजक या विवाह आदि अवसरों पर घर का स्वामी बहुत अधिक कार्य-व्यस्त होता है। उसे कई घंटे लगातार परिश्रम करना पड़ता है। और फिर सोने का अवसर तो मिलता ही नहीं। कभी-कभी भोजन करने की फुर्सत भी नहीं मिलती।

इस पर समारोह या विवाह की समाप्ति से पूर्व उसे कभी बीमारी होते नहीं देखी गई या इसके विपरीत विवाह आदि के अवसरों पर घर के जो लोग बीमारी के कारण दुर्बल भी होते हैं, घर के कामकाज करने लग जाते हैं।

जो लोग लम्बी बीमारी के कारण बिस्तरों पर पड़े होते हैं और हर प्रकार का कामकाज करने के अयोग्य समझे जाते हैं, उन पर जब कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी का काम आ पड़ता है, जिसे उनके बिना कोई दूसरा व्यक्ति न कर सकता हो तो वे भी रोग और शरीरिक असमर्थता कि किञ्चिन्मात्र चिन्ता किए बिना अपने कार्य में जुट जाते हैं और उसे सम्पन्न करते हैं।

जब कभी किसी घर का वह व्यक्ति मर जाता है या किसी कारण काम करने के अयोग्य हो जाता है जिस की कमाई पर घर के बाकी सब लोग पलते हैं, तो अपने ऊपर सारी जिम्मेदारी आते हुए देखकर बहुत दिनों का रोगी व्यक्ति भी उठकर काम करने लग जाता है। इस कठिन अवसर पर जबकि यदि वे कार्य न करें तो घर के छोटे-छोटे बच्चे भूखों मरने लगें, वे अपने रोग और असमर्थता के सम्बन्ध में कुछ सोचने तक का अवसर नहीं पाते और अपने कर्त्तव्य में जुट जाते हैं।

प्रत्येक समाज में बहुत-सी ऐसी विधवाएँ तथा अन्य स्त्रियां देखी जाती हैं, जो अनेक प्रकार के परिश्रम करके तथा कष्ट उठाकर न केवल

अपना पेट पालती हैं, अपितु अपने आश्रितों का भी पेट भरती हैं। इनमें कई स्त्रियाँ ऐसी भी होती हैं, जिन्होंने यह जिम्मेदारी आ जाने से पहले अपने हाथ से कभी कोई काम नहीं किया होता है। यदि दिनों के फेर से उन पर यह जिम्मेदारी न आ पड़ी होती, तो शायद वे इतना परिश्रम एक दिन भी न कर सकतीं और अनेक रोग उन्हें आ घेरते। परन्तु संसार-चक्र को चलाने वाली आवश्यकता उन्हें आकर कहती है कि 'उठो, काम करो, नहीं तो तुम्हें और तुम्हारे बाल-बच्चों को भूखों मरना पड़ेगा।' यह आवश्यकता ही उनके रोगों की सब से बड़ी औषधि है।

सभी देशों में ऐसे हजारों आदमी दिखाई देते हैं, जिन्हें आवश्यकता इस बात के लिए विवश करती है कि वे उठकर कुछ न कुछ काम करें। यदि आवश्यकता की विवशता उनके सामने न होती तो शायद वे बिस्तर पर ही पड़े रहते और कभी तबीयत ठीक न होने का और कभी और किसी बीमारी का बहाना करते रहते। किन्तु भूखा पेट और शीत से ठिठुरने वाला शरीर तथा आश्रितों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उन्हें एक दिन भी बीमारी के बहाने लेटे रहने की आज्ञा नहीं देतीं। उनका जी चाहे या न चाहे उन्हें झख मार कर काम करना पड़ता है। और काम करने वालों को आवश्यक शक्ति की कभी कमी नहीं होती।

जिस समय मनुष्य के सामने जीवन और मृत्यु का प्रश्न होता है, जिस समय बाहरी दुनिया में कहीं से भी सहायता मिलने की गुंजाइश नहीं रहती, जिस समय सब ओर निराशा ही निराशा दिखाई देती है, ऐसी अनिवार्य आवश्यकता के अवसरों पर संसार के बहुत से कठिन और विचित्र कार्य सम्पन्न हुए हैं, और सदा होते रहते हैं।

यही महती आवश्यकता मनुष्यों से ऐसे बड़े-बड़े अति मानवी कृत्य करा डालती है, साधारण अवस्था और साधारण आवश्यकता में जिनका होना कठिन ही नहीं असम्भव भी होता है।

छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब प्रत्येक मनुष्य में एक ऐसी अद्भुत शक्ति वास करती है, जो उसे सदा उद्योगशील और उन्नति के पथ पर अग्रसर रखती है। यह बात दूसरी है कि किसी को इस दैवी शक्ति का ज्ञान

हो या न हो। परन्तु वह तो सदा उसे कर्त्तव्य-कर्म में लगाए ही रखती है।

यही वह शक्ति है जो हमें अपने पैरों पर खड़ा होने की प्रेरणा देती है, निद्रा और आलस्य को दूर करती है, और दारिद्र्य और दैन्य में हमें धैर्य प्रदान कर संकटों को सहने में समर्थ बनाती है।

शरीर को सदा यह अपने नियन्त्रण में रखती है और उसे इच्छा के विपरीत काम-काज करने के लिए बाध्य करती है। यह दैवी शक्ति कहीं बाहर से नहीं आती। सदा हमारे भीतर ही रहती है। यह मानसिक शक्ति है। इसे पहचानिए, इसे जगाइए।

२

आरोग्य का रहस्य

चित्त की प्रसन्नता से आत्मा में एक प्रकार की चांदनी छिटकी रहती है। और आत्मा को शान्ति से ओत-प्रोत रखती है। —एडीसन

क्या कभी किसी ने इस प्रश्न पर भी विचार किया है कि हम बीमार क्यों पड़ते हैं? क्या कभी किसी ने यह भी सोचा है कि आरोग्य क्या है? और यह कि मनुष्य कभी रोगी और कभी नीरोग क्यों रहता है? और कि कुछ लोग अधिक बीमार क्यों रहते हैं और कुछ को कभी कोई बीमारी क्यों नहीं होती?

यदि आपका कोई मित्र बीमार हो जाता है और आप उससे पूछते हैं कि आप कैसे बीमार हुए? क्या बात हुई? तो सम्भवतः आपको उत्तर मिलेगा कि मुझे सर्दी लग गई थी। या फिर यह कि मैं वर्षा में भीग गया था। 'मुझे यों ही ज्वर आ गया,' एक उत्तर यह भी हो सकता है। कुछ लोग भाग्य की बात और ईश्वर की इच्छा भी बता सकते हैं।

परन्तु हम आपको स्पष्ट बता देना चाहते हैं कि ऊपर दिए गए उत्तरों में से एक भी ठीक नहीं है। तो क्या बीमार ने झूठा उत्तर दिया है? नहीं यह बात भी नहीं है। भ्रामक ज्ञान ही इसका कारण है।

एक बात तो निश्चित है, जिससे असहमत होने का कोई कारण नहीं है, कि रोग एक प्रकार का दण्ड है। और दण्ड बिना अपराध के नहीं मिलता। बड़ी शेखी से यह कहना कि अमुक समय में छः मास या वर्ष भर

बीमार रहा, यह कहने के ही समान है कि अमुक समय एक अपराध के कारण मैं छः मास या वर्ष भर जेल में रहा। इस का कारण यह है कि जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ता है तो अपने ही किसी अपराध या दोष के कारण पड़ता है। और वह अपराध या दोष जितना ही बड़ा या भयंकर होता है रोग भी उतना ही बड़ा या भयंकर होता है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर विराजमान हमारा अन्तस्थ न्यायाधीश ही इस दण्ड-विधान की व्यवस्था करता है। रोगी होना मानो नैतिक कैद का दण्ड भोगना है।

प्रत्येक रोगी व्यक्ति को यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिये कि वह अपने रोग का जो कारण समझता है या उसका चिकित्सक जो कारण बताता है, वे सब कारण गलत हैं।

तो प्रश्न उठता है कि रोग का वास्तविक कारण क्या है? इस प्रश्न का एक मात्र उत्तर यह है कि तुम स्वयं ही उस रोग के कारण हो।

मन ही हमारे जीवन का क्रम निश्चित करता है। किसी व्यक्ति के जीवन में जितने विचारों और घटनाओं का जन्म होता है उन सबका उद्गम स्थान मन ही है। अभिप्राय यह कि हमारी अच्छी और बुरी अवस्थाएँ सब हमारे मन से ही उत्पन्न होती हैं। हमारे सब प्रकार के विचार—भले और बुरे, आशा और निराशा, सुख-दुख, भय और निर्भयता, प्रेम और घृणा, आरोग्य और रोग सब का जन्मदाता मन है। हमारा अपना मन। यह मन हमारा मित्र भी है और शत्रु भी। यह हमें सिंहासन पर भी बिठा सकता है और जेल की कोठरी में भी। इसकी शक्ति अनन्त है—अपरिमेय। इसकी सम्भवनाएँ कल्पनातीत हैं।

उपर्युक्त कथन का आधार कल्पना नहीं है, यह तो वैज्ञानिक तथ्य है। हम जो कुछ सोचते-विचारते हैं, उससे हमारे शरीर में एक प्रकार का जल सींचा जाता है, जिससे हमारे शरीर के जीवकोषों में एक प्रकार की चैतन्यता का जन्म होता है। मनुष्य-शरीर में इस प्रकार के अनगिनत जीवकोष होते हैं। इनमें से प्रत्येक जीवकोष जीवन-शक्ति युक्त होता है और अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है। जिस व्यक्ति के जैसे विचार होंगे, उनके अनुरूप ही उन जीव-कोषों के रूप और गुण होंगे। इन जीव-

कोषों का पोषण रक्त द्वारा होता है। इन कोषों का गुण और धर्म दो बातों के योग से निर्धारित होता है :

१. रक्त के रासायनिक स्वरूप से और २. विचारों द्वारा। मानसिक विकारों के कारण प्रतिक्षण अनगिनत जीवकोषों का नाश और नए जीवकोषों का निर्माण होता रहता है। हमारे विध्वंसक मानसिक वेगों से इन कोषों का अत्यधिक मात्रा में विनाश होता है और रचनात्मक वेगों से अत्यधिक मात्रा में निर्माण। हम जब कोई बुरा काम करते हैं—यथा किसी पर क्रोध करते हैं या शरीर की आवश्यकता से अधिक खा-पी लेते हैं अथवा जब किसी नशीली वस्तु या उत्तेजक द्रव्य का सेवन करते हैं तो इन कोषों का अत्यधिक मात्रा में विनाश होता है।

जिस प्रकार वीर्य के एक सूक्ष्मतम बिन्दु में समूचा मानव शरीर अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है उसी प्रकार इन सूक्ष्म जीव-कोषों में भी। संसार के सभी पदार्थों का निर्माण इन्हीं कोषों द्वारा होता है। इन कोषों में लिंग-भेद भी होता है। कुछ कोष पुल्लिंग, कुछ स्त्रीलिंग और कुछ नपुंसकलिंग होते हैं। इनके बनने और नष्ट होने की क्रिया अपने आप होती रहती है। ये कोष स्वयं ही अन्य कोषों की सृष्टि करते रहते हैं

शरीर-विज्ञान वेत्ताओं ने हिसाब लगाया है कि चौबीस घंटों में एक कोष से १,७०,००,००० नए कोष उत्पन्न होते हैं। इतनी ही मात्रा में पुराने कोष अपनी चेतना शक्ति खोने लगते हैं। आवश्यकता इस बात की होती है कि चेतना खो रहे इन कोषों में नई चेतना शक्ति का संचार किया जाए। प्रकृति ने हमारे शरीर में इसकी व्यवस्था भी कर रखी है। हमारे शरीर का जो अंग हृष्ट-पुष्ट होता है, उस अंग के कोष आलसी और मन्द होते हैं। ऐसे कोष स्त्री जाति के होते हैं। किन्तु अपुष्ट अंगों के कोषों को अपना पोषक द्रव्य प्राप्त करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न करना पड़ता है। ऐसे कोष नर जाति के होते हैं। जिन कोषों को अपने पोषक द्रव्य के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता वे जड़ और मन्द हो जाते हैं। उन कोषों से उत्पन्न होने वाले कोष भी उन्हीं की तरह जड़ और मन्द होते हैं। इसके विपरीत जिन कोषों को अपना पोषक द्रव्य बहुत परिश्रम करने पर भी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता वे

सदा भूखे रहने के कारण चंचल और क्रियाशील होते हैं। परिणाम यह होता है कि एक वर्ग के कोष जड़ और मन्द होने के कारण तथा दूसरे वर्ग के अधिक परिश्रम तथा भूखे रहने के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। किन्तु इस महाविनाश को रोकने की व्यवस्था भी प्रकृति ने स्वयं ही कर दी है। जिस समय भूख कोष अपने भोजन की खोज में इधर-उधर दौड़ता है, उस समय यदि मार्ग में उसकी भेंट किसी स्त्री कोष से हो जाती है तो दोनों का संयोग हो जाता है। इस संयोग का लाभ दोनों प्रकार के कोषों को होता है। स्त्रीजाति के मन्द और जड़ को इस संयोग के कारण नई चेतना शक्ति प्राप्त होती है और पुरुष जाति के भूखे कोष को उस स्त्री कोष से पोषक द्रव्य मिल जाता है। इस प्रकार उनके महाविनाश का कोई भय नहीं रह जाता।

झोंपड़ी में जन्म लेने वाले बच्चों की अपेक्षा महलों में जन्म लेने वाले बच्चों की अवस्था बहुत भिन्न हुआ करती है। गरीबों के बच्चों को आरम्भ में ही अनेक कठिनाइयों—अभावों—का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत अमीरों के बच्चों को सब प्रकार की सुख-सुविधा प्राप्त होती है। ठीक यही दशा मानव-शरीर को बनाने वाले इन कोषों की भी होती है। मनुष्य अपने मानसिक विकारों या सद्विचारों से इन कोषों की वृद्धि करता है। इस प्रकार मानसिक विकारों द्वारा झोंपड़ी में और सद्विचारों द्वारा महलों में उनका विकास-वृद्धि होता है। जैसा कि पहले लिखा है ये कोष रक्त से अपना पोषक द्रव्य ग्रहण करते हैं और हमारा प्रत्येक मानसिक विकार या विचार रक्त के गुण-धर्म को बदलता रहता है। "जैसा अन्न वैसा मन" के अनुसार ये कोष भी उस रक्त का गुण और-धर्म ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार हमारे मानसिक विकार या सद्विचार हमारे शरीर के प्रत्येक कोष में समा जाते हैं और हम उन विकारों या विचारों के दास बन जाते हैं। जब हम किसी व्यक्ति पर बहुत अधिक क्रोध करते हैं, तब उस क्रोध के कारण हमारे रक्त में भी रासायनिक परिवर्तन होता है और उस रक्त से अनगिनत कोष उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार क्रोध की मनोवृत्ति हमारे भीतर स्थायी हो जाती है। इसलिए यदि हम बार-बार क्रोध करते हैं तो हमारे शरीर

में प्रत्येक क्षण ऐसे अनगिनत कोष उत्पन्न हो जाते हैं जो क्रोधी रक्त से पोषण प्राप्त करने के कारण वैसे ही गुण-धर्म से युक्त होते हैं। क्रोध एक विध्वंसक मनोविकार है। अतः इसके कारण हमारे शरीर में रोगी और विकृत कोषों का शैतानी साम्राज्य स्थापित हो जाता है। इन दुष्ट कोषों से आगे चलकर इसी प्रकार के दुष्ट परमाणुओं की सृष्टि होती है और परिणाम यह होता है कि हमारा शरीर अस्वस्थ और रोगी हो जाता है। समय से पूर्व ही बुढ़ापा और मौत पास आते जाते हैं। यह भीतर की आसुरी सेना हमारे दैवी अंश को परास्त कर अपना साम्राज्य स्थापित कर लेती है।

ये दुष्ट कोष आरोग्य, सन्तोष, प्रेम आदि सद्भावों के स्थान पर—रोग, असन्तोष और घृणा के असद्भावों की प्रस्थापना कर देते हैं। इनके वशीभूत मनुष्य पागल कुत्ते की भान्ति क्रोध के आवेश से भरा लोगों को काटने दौड़ता है।

मन की इसी शक्ति को लक्ष्य करके भगवान् कृष्ण ने कहा था कि "मन ही हमारे बन्धन और मोक्ष का कारण है।"

महात्मा ईसा ने भी कहा है कि "हम मन में जो कुछ सोचते हैं, वही बन जाते हैं।"

वेद में तो एक पूरा सूक्त ही इस आशय का है, कि जिस में बार-बार प्रभु से प्रार्थना की गई है कि "हे भगवान् मेरा मन शिव संकल्प वाला हो।" (तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु)।

अभिप्राय यह है कि यदि जीवन में कोई सबसे आवश्यक काम है तो वह यह कि हम अपने मन को रचनात्मक प्रवृत्तियों की ओर लगाएँ। उसे अपने बन्धन का नहीं मुक्ति का कारण बनाएं। उसकी असीम शक्ति से भरसक लाभ उठाकर जीवन को सुखी करें। यदि हम अपने मन पर पूरा-पूरा अधिकार रखें, किसी प्रकार के दुष्ट अकल्याणकर मनोविकारों को उसमें न आने दें तो हम स्वयं ही अपने भाग्य के विधाता बन जाएँगे।

ईश्वर ने हमें संसार में भेजते समय हमारे सिर पर दुःख और दुर्भाग्य की गठरी बांध कर नहीं रखी थी। हमारी स्थिति ठीक उस लड़के की भान्ति है जो पढ़ने के लिए घर से पाठशाला जाता है किन्तु पाठशाला

न जाकर मार्ग से हटकर इधर-उधर खेलने लगता है और अपने जैसे ही निकम्मे साथियों से कुछ और भी बुरी बातें सीख लेता है। वह बड़ा होकर भाग्य को, ईश्वर को और अपने माता-पिता को दोषी ठहराता है। हम मनकी लगाम को ढीला कर देते हैं और इन्द्रियां रूपी घोड़े जब मन-माने मार्ग पर चलने लगते हैं तो रथ, रथी और सारथी तीनों को विनाश के गढ़े में गिरा देते हैं।

हमें यह भली-भान्ति समझ लेना चाहिए कि हम ही अपने सबसे बड़े राजाधिराज हैं और हमारे शरीर का संगठन करने वाले असंख्य कोष ही हमारी असंख्या प्रजा है। यदि राजाधिराज अपने कुप्रबन्ध और अनीति के कारण अपनी प्रजा को विनाश के कार्यों में लगाएगा तो एक दिन यह प्रजा उसका विनाश करेगी। यदि इस विनाश से बचना चाहते हैं तो इस प्रजा को विनाश के कामों से हटाकर निर्माण के रचनात्मक कामों में लगाइये। वे रचनात्मक काम हैं—प्रेम, सन्तोष, निर्भयता, आत्मविश्वास, परोपकार, सेवा।

इन रचनात्मक कामों के नाम याद कर लेने भर से काम चलने वाला नहीं है, उन्हें अपने व्यवहार में, आचरण में कर दिखाना होगा। कुछ समय अभ्यास द्वारा करते रहने पर ये कार्य स्वभाव में बदल जाएंगे तब उनके लिए किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं रहेगी। परन्तु यह स्थिति तभी उत्पन्न होगी, जबकि बहुत ही सचेष्ट और सतर्क होकर निरन्तर अभ्यास करते रहेंगे। सद्भावों का निरन्तर चिन्तन अभ्यास और व्यवहार करके बार-बार उन्हें दोहराना होगा। तभी वे स्थायी बन सकेंगे।

मन का निग्रह कोई आसान काम नहीं है। निरन्तर जागरूकता, सतत् प्रयत्न और अभ्यास द्वारा ही यह वश होने वाला है। इनमें भी अभ्यास प्रमुख है। अभ्यास द्वारा कठिन से कठिन और असंभव कार्य भी अन्त में सुगम और सम्भव हो जाते हैं। स्वामी विवेकानन्दजी ने एक जगह कहा है कि "बिना अभ्यास के कोई भी विद्या साध्य नहीं होती और सच्ची यश-प्राप्ति अभ्यास पर ही सर्वथा अवलम्बित है।"

३

दरिद्रता

दरिद्रता आलस्य का पुरस्कार है।—एक दृढ़ कहावत
दरिद्रता बहुधा मनुष्य को सम्पूर्ण साहस और धैर्य से हीन कर देती है। —बैंजमिन फ्रैंकलिन
दुनिया में दरिद्रता के बराबर कोई दुख नहीं। —रामायण

दरिद्रता कोई प्राकृतिक वस्तु नहीं है। और न ही वह मानव स्वभाव के अनुकूल ही है। वह हमारे शारीरिक और मानसिक विकास में रुकावटें डालती है। परम दयालु परमात्मा ने यह कभी नहीं चाहा कि दरिद्रता के विनाशकारी प्रभाव से मनुष्य अपना सब कुछ गंवा बैठे। वह सदा के लिए दूसरों की दासता स्वीकार कर ले और समाज में अपमानित जीवन व्यतीत करे। उसे जीवन भर पेट की आग के लिए ईंधन जुटाने के सिवा और कुछ करने का अवसर ही न मिले। उसका जीवन निश्चय ही किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए सिरजा गया है, न कि मात्र पेट-पूर्ति के लिए।

दरिद्रता मनुष्य को छोटे-छोटे भरण-पोषण आदि के कामों में इस प्रकार उलझाए रखती है कि उसे अपने गुणों और योग्यता को दिखाने का अवसर ही नहीं मिल पाता। उसका विकास रुक जाता है और वह समय और समाज से पिछड़ जाता है।

वह व्यक्ति जो अपना सारा समय और शक्ति अपने तथा अपने परिवार के पेट भरने और तन ढकने में लगा दे, क्या कभी स्वतंत्रता का अनुभव

कर सकता है ? कभी नहीं, फिर चाहे उसका राष्ट्र भले ही स्वतंत्र हो। दरिद्र व्यक्ति का जीवन सुसंगत और सुव्यवस्थित नहीं रह सकता। उसे सदा ही अपने स्वतंत्र विचारों को दबाकर दूसरों की हाँ-हाँ में हाँ मिलानी पड़ती है। यहीं से उसके नैतिक पतन का आरम्भ होता है। धनाभाव के कारण वह न तो स्वच्छ स्थान में रह पाता है और न ही अपने बच्चों को शिक्षा उचित ढंग से दिला सकता है। वह दयालु और परोपकारी स्वभाव का होते हुए भी किसी की कुछ सहायता नहीं कर पाता। उसकी उदारता धरी-धराई रह जाती है। उसकी भावनाओं, कामनाओं और आकांक्षाओं का नाश हो जाता है। उन्नति के सारे द्वारा उसके लिए बन्द हो जाते हैं। उसकी जीवन शक्ति दिनों दिन क्षीण होती जाती है—और उसके जीवन में आनन्द नामक कोई वस्तु नहीं रह जाती। यह राक्षसी न केवल उसके सामाजिक जीवन को कलंकित कर देती है अपितु उसका पारिवारिक जीवन भी दुःख और कलह से भर जाता है।

यह दरिद्रता स्वाभाविक मानवीय गुणों से वंचित कर पशु ही बनाकर छोड़ती है। संसार का कौन-सा ऐसा पाप है जिसे भूखा आदमी नहीं करता या नहीं कर सकता। यहां तक कि जीविते च्छा जो कि संसार की सभी इच्छाओं से बलवती मानी जाती है उसे छोड़कर लोगों को आत्महत्या करते देखा गया है। आत्महत्या के कारणों की जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि अधिकांश लोग धनाभाव से पीड़ित होकर ही इस ओर प्रवृत्त होते हैं। साहूकारों के तकाजों से घिरा हुआ, पैसे-पैसे और दाने-दाने का मोहताज, स्त्री-बच्चों को भूख से तड़पता देखते हुए, क्या कोई व्यक्ति समाज, धर्म और राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकता है ? अपनी मान-मर्यादा के निर्वाह का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अपवाद स्वरूप कुछ महामानव ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने घोर दरिद्रावस्था में रहकर भी ऐसे अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिन्हें संसार कभी भूल नहीं सकता। किन्तु हमें इस सत्य की ओर से भी आँखें नहीं मूंद लेनी चाहिए कि इस राक्षसी ने कितने अच्छे-अच्छे जीवनों को नष्ट-भ्रष्ट किया है।

इसके कुपरिणाम देखने हों तो कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। हमारे चारों ओर इसका भीषण प्रभाव स्पष्ट अंकित है।

इसके प्रभाव से ममतामयी माँ अपने बच्चे को कुछ सेर दानों के लिए बेच डालती है। जवानी में बुढ़ापे के लक्षण, पीले-पीले चेहरे, बीमारियों के घर बने शरीर, ये मैले-चिथड़े पहने लोग, ये उदास चेहरे, ये भिखमंगे, ये सड़कों के किनारे पड़े रोगी, होटलों के आगे पड़ी जूठन के ढेरों में से कुछ ढूंढ़ते-टटोलते लोग, शरीर का सौदा करनेवाली स्त्रियां, हाथ-गाड़ी खींचने वाले मजदूर, अधिकांश कैदी और तपेदिक के रोगी इसी पिशाचनी के सताए हुए हैं। इसी ने उन्हें ऐसा बनने, ऐसा करने के लिए विवश किया था।

आपको कुछ लोग ऐसे भी मिलेंगे जो इस पिशाचनी का स्तुति-गान किया करते हैं किन्तु उनमें से अधिकांश ऐसे होंगे जिन्हें इससे कभी नजदीक का वास्ता न पड़ा होगा और वे भविष्य में भी कभी यह नहीं चाहेंगे कि उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर दरिद्रता देवी कभी उनके घर को भी पवित्र करे। ऐसे लोग जब चटपटे खानों से पेट भर लेते हैं तो अंगड़ाई लेकर पेट पर हाथ फेरते हुए कहते हैं कि "जमाना बड़ा नाजुक है। न मालूम गरीब बेचारे किस प्रकार गुजरबसर करते होंगे। लेकिन नहीं, फिर भी हम लोगों से तो गरीब लोग ही अच्छे हैं। उन्हें न तो कोई झगड़ा-टंटा होता है और न दिन-रात चिन्ता ही सताती है। हमें तो अपनी मान-प्रतिष्ठा को बनाए रखना कठिन हो जाता है।" किन्तु अगर उन्हें कोई कहे कि क्यों नहीं आप भी अपना सब माल-असबाब, धन-दौलत त्यागकर गरीबों जैसा सुखी और निश्चिन्त जीवन बिताते तो वे कभी भी इसके लिए तैयार नहीं होंगे। उनकी दरिद्रता की प्रशंसा का मूल्य महत्त्व-हीन तो है ही साथ ही प्रवंचनापूर्ण भी है।

हम प्रत्येक व्यक्ति को यह स्पष्ट रूप से बता देना चाहते हैं कि संसार में दरिद्रता से बढ़कर कष्टदायक कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इससे सदा बचने का प्रयत्न करना चाहिए। यह दरिद्रता लज्जा, शान्ति, शील, संकोच आदि सारे सद्गुणों का विनाश कर देती है।

शारीरिक अस्वस्थता अथवा अन्य किसी प्राकृतिक विपत्ति के कारण जो दरिद्रता हो—अर्थात ऐसी दरिद्रता जिसे दूर करना सर्वथा असंभव हो अप्रतिष्ठा या अपमान का कारण नहीं होती। समाज ऐसे लोगों के प्रति प्रायः दया का व्यवहार करता है। सभी कर्त्तव्यपरायण लोगों को चाहिए कि वे ऐसे लोगों की दीनता को दूर करने का प्रयास करें। निन्दनीय दरिद्रता तो वही है जिसे प्रयत्न और पुरुषार्थ द्वारा दूर किया जा सकता है। ऐसी दरिद्रता, आलस्य के कारण निठल्ले बैठे रहने, अनाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करने या काम को ठीक ढंग से न करने या विचार पूर्वक कार्य न करने के कारण होती है। इस दरिद्रता को आसानी से भगाया जा सकता है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को ऐसी दरिद्रता से लज्जित होना चाहिए। क्योंकि वे स्वयं ही उसके जन्मदाता और पोषक हैं। उन्होंने अपनी अयोग्यता, अकर्मण्यता और अनाचरण के कारण उसे जन्म दिया है। ऐसे दरिद्रों की दशा पर, न केवल यह कि समाज ध्यान नहीं देता है बल्कि उन्हें घृणा की दृष्टि से भी देखता है।

दरिद्र व्यक्ति की सब से बड़ी कठिनाई यह है कि वह इस बात पर विश्वास ही नहीं कर सकता कि इस दरिद्रता का जन्मदाता वही है और वही इसे दूर भी कर सकता है। आप किसी भी दरिद्र व्यक्ति से उसकी दरिद्रता का कारण पूछें तो वह झट से कह देगा कि मेरी किस्मत ही खोटी है। किस्मत तेज होती तो गरीब के घर पैदा ही क्यों होते। इस प्रकार की एक और व्यर्थ की सी बात इन लोगों के मस्तिष्क में घुसी रहती है और वह यह कि 'माया को माया मिले' उनका यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि जब तक हमारे पास बहुत साधन न हों, हम कोई कारोबार नहीं कर सकते। इस प्रकार अपनी योग्यता और कार्य-शक्ति पर से उनका विश्वास उठ जाता है। और यह आत्मविश्वास की कमी मनुष्य के विनाश का कारण बन जाती है।

आजकल पाश्चात्य सभ्यता के कारण चारों ओर भौतिक सुख और भौतिक लाभ के लिए सबसे अधिक प्रयत्न किया जाता है। लोगों का यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि धन ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है और भौतिक सुखों की जो होड़-सी सारे संसार में चल रही है उससे वास्तव में यह परिस्थिति

पैदा हो गई है कि लोग समझने लगे हैं कि धन के बिना कोई काम चल ही नहीं सकता। आज की सभ्यता तो यह कहती हुई जान पड़ती है कि इस बीसवीं सदी में दरिद्रों के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्हें अपना बोरिया-बिस्तरा बाँधकर इस दुनिया से कूच कर जाना चाहिए। अगर यहाँ रहना चाहते हो तो तुम्हें धन अवश्य कमाना पड़ेगा।

दरिद्रता का दूसरा पक्ष भी है। किसी ने ठीक ही कहा है कि "प्रत्येक बुराई में कुछ अच्छाई अवश्य हुआ करती है।" तो क्या फिर दरिद्रता में भी कोई अच्छाई है? हां अवश्य है किन्तु उस अच्छाई के लिए दरिद्रता को वरण करने की सलाह हम आपको नहीं देंगे। दरिद्रावस्था में मनुष्य के साहस, सहनशीलता, कर्मण्यता आदि का अच्छा विकास हो सकता है। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य कुछ समय तक दरिद्रावस्था में रह चुका होता है, उसमें जन्मजात धनियों की अपेक्षा परोपकार, दया, सहानुभूति आदि का भाव अपेक्षाकृत अधिक होता है।

जो लोग जन्म से ही दरिद्र हों और जिनके खाने-पीने तक का ठिकाना न हो, उन्हें भी हम यह सलाह देंगे कि वे कभी निराश न हों। क्योंकि हम संसार में प्रतिदिन ऐसे व्यक्तियों को देखते हैं जो बहुत गरीब घरों में पैदा हुए थे, उनका पालन-पोषण और शिक्षा भी ठीक से नहीं हो सकी किन्तु अपने परिश्रम और बुद्धिमत्ता से वे बहुत धनी हो गए और समाज के और राष्ट्र के नेता बन गए। ऐसे लोगों को आदर्श मानकर उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और पूरे उत्साह से प्रयत्न पूर्वक वर्तमान कठिन परिस्थिति से निकलकर अपनी अवस्था सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

जब किसी मनुष्य में अपनी योग्यता और शक्ति पर विश्वास नहीं रह जाता तब धीरे-धीरे उसमें उन सब गुणों का भी लोप होने लगता है जिनके कारण वह सफलता को प्राप्त कर सकता है अथवा उन्नति कर सकता है। आत्मविश्वास की यह कमी ऐसी मानसिक स्थिति उत्पन्न कर देती है, जिसमें जीवन बोझ लगने लगता है। महत्वाकांक्षाएँ, कर्मठता, कार्यचातुरी तथा विचारशक्ति सब का लोप हो जाता है। परिणाम स्वरूप ऐसा व्यक्ति ऐसी ढाल पर पहुंच जाता है कि

सिवा नीचे लुढ़कने के और कोई चारा नहीं रह जाता। अतः दरिद्रावस्था से छुटकारा पाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह इस ढाल पर पहुंचने से बचे और अपने मन को इतना दुर्बल न बना ले कि वह दोबारा किसी कार्य के लिए तैयार ही न हो।

दरिद्रता अपने में स्वयं इतनी भयानक नहीं है जितना कि उसका विचार। यह समझ बैठना कि हम सदा दरिद्र ही रहेंगे, पतन का कारण बन जाता है। धन का दारिद्र्य उतना विनाशक नहीं है जितना मन का। इस सम्बन्ध में छोटी-सी रोचक कथा सुनिये—

मांधाता जब स्वर्ग के पारिजात वन में पहुंचे तो कल्प वृक्ष के पास जाते ही उनका मन तरह-तरह की इच्छाओं से भर गया। उन्होंने सोचा—यदि यहां मेरा विलास भवन होता···! बस फिर क्या था, मन के सकल्प मात्र से उस स्थान पर तत्काल एक सुन्दर विलास भवन तैयार हो गया। फिर मांधाता की इच्छा हुई कि काश यहां मादक पेय और अप्सराएं भी होतीं···! क्षण भर में यह सब भी वहां तैयार मिला। कुछ समय वे मन चाहा सुख भोगते रहे। फिर मन में विचार आया—कहीं देवराज इन्द्र को पता लग गया और उसने मुझे स्वर्ग से निकाल दिया तो·····। दूसरे ही क्षण मांधाता सौ-सौ टुकड़े होकर भूलोक पर गिर पड़े।

गुरु ने शिष्य को समझाते हुए कहा—"वत्स, यह जीव ही मांधाता है, और यह जगत ही कल्प वृक्ष है। यहां जो जैसा सकल्प करता है, वैसा ही पाता है।"

अपने को भिखारी समझने वाला सदा भिखारी ही बना रहेगा और सदा विफलता के विचारों को मन में स्थान देने वाला कभी सफल नहीं हो सकता। यदि कोई सदा यह सोचता रहे कि मुझे तो धनाभाव से वृद्धावस्था में भूखों मरना पड़ेगा तो निश्चय उसके भूखों मरने की सम्भावना बढ़ जाएगी। निराशा और सन्देह के विचार साहस और धैर्य का नाश करते हैं। साहस और धैर्य के अभाव में कठिनाइयों का वीरता पूर्वक सामना नहीं किया जा सकता।

चुम्बक सदा सही हालत में रहना चाहिए। उसके ठीक होने का

एक मात्र प्रमाण यह है कि वह अपने जैसी वस्तुओं को अपनी ओर खींचता है। मनुष्य के शरीर में एक ही उपकरण है और वह है उसका मन। हमारे मन पर हमारे विचारों और भोजन का प्रभाव पड़ता है। इसलिए विचारों और भोजन की पवित्रता का सदा ध्यान रखना चाहिए। हमें एक होशियार पहरेदार की भाँति सदा जागरूक रहना चाहिए ताकि कोई भी बुरा विचार हमारे मन में प्रवेश न पा सके। हम जैसा सोचते हैं वैसा ही बन जाते हैं।

यह निर्विवाद है कि हम जिस दिशा की ओर अपना मुंह रखेंगे, उसी ओर बढ़ेंगे भी। ऐसा कभी नहीं होता कि हमारा मुंह तो हो पूर्व की ओर और हम चल रहे हों पश्चिम की ओर। हम यदि मन के भीतर की दरिद्रता पर विजय प्राप्त कर लें तो फिर हमें बाहरी दरिद्रता पर विजय प्राप्त करने में कुछ भी कठिनाई न होगी। क्योंकि मानसिक परिवर्तन होते ही शारीरिक परिवर्तन हो जाएगा।

यदि हम धनवान् होना चाहते हैं तो हमें चाहिए कि अपने विचारों को सम्पन्नता की ओर अग्रसर करें। आजकल ऐसे बहुत से पढ़े-लिखे और समर्थ लोग दिखाई पड़ते हैं जो यदि अपने विचारों को ठीक रखें और अपनी शक्तियों का ठीक-ठीक उपयोग करें तो बहुत कुछ यश लाभ कर सकते हैं। परन्तु उनमें भी हीनता—निराशा, दरिद्रता और असमर्थता का भाव इतना अधिक होता है कि वे अपना पेट भी नहीं भर पाते और अपमान का जीवन बिताते हैं।

वे अनमने होकर निराशा और निरुत्साह के साथ दो-चार छोटे-मोटे कामों को शुरू करते हैं और असफल होकर कहने लगते हैं कि हमारा भाग्य ही खोटा है। इस प्रकार असफलता से निराशा और निरुत्साह तथा निरुत्साह और निराशा से असफलता, यह चक्र उनके जीवन में प्रारम्भ हो जाता है। असफलता और निराशा अन्योन्य आश्रित हो जाती हैं और आदमी को किसी काम का नहीं छोड़तीं।

इसके विपरीत यदि ऐसे लोग मन में यह विचार दृढ़ कर लें कि हम अवश्य सफल होंगे, पिछली असफलता जिन कारणों से हुई है इस बार उन्हें दूर करेंगे और अधिक लगन और परिश्रम से कार्य को सफल करेंगे

तो निश्चय ही वे सफल हो सकते हैं। बस, केवल इस बात की आवश्यकता है कि हम अपने मन का भाव बदलें और पूरे उत्साह और लगन से काम में लग जाएँ। पर न जाने क्यों लोग इस बात को समझ नहीं पाते।

यदि हम जीवन में सफलता चाहते हैं तो सबसे पहला काम यह करना होगा कि इस शंका पिशाचिनी को अपने भीतर से मार भगाना होगा। यह हमारे सारे सुकृतों के फल को नष्ट कर देती है। जब तक आकांक्षाओं के बीच इन कुशंकाओं का पर्दा पड़ा रहेगा तब तक सफलता के दर्शन नहीं होंगे। हमारे सफल होने की संभावनाएँ इस बात पर निर्भर करती हैं कि अपनी सफलता का हमें कितना दृढ़ विश्वास है। जो लोग सदा 'क्या करें', 'कैसे करें' आदि अनिश्चित और आत्मविश्वास-हीन बातें किया करते हैं, वे कभी सफल-मनोरथ नहीं होते।

जो लोग अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में सदा यही कहते रहते हैं कि इसमें कुछ भी लाभ नहीं है, अजी, इसमें रखा ही क्या है, ऐसे लोग उस व्यवसाय से कभी भी सम्पत्तिशाली नहीं बन सकते। जो व्यक्ति सदा नीचे की ओर देखता रहेगा, उसका सिर कभी भी ऊँचा नहीं हो सकता। संसार में जितने भी बड़े-बड़े लोग हुए हैं, वे कभी भी यह कहते नहीं सुने गए कि क्या करें, समय ही खराब है, सभी जगह घाटा ही घाटा हो रहा है। जिसका हृदय और विचार-क्षेत्र ही संकुचित होगा, उसकी अवस्था कैसे सुधरेगी। लक्ष्मी तो सदा ही उद्योगी और साहसी जनों के पास रहती है।

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी।" (नीति)

उदार और व्यापक मनोवृत्तियों वाले लोगों को ही धन और यश की प्राप्ति होती है। किसीने लक्ष्मी की तुलना सिंहनी के दूध से की है। सिंहनी का दूध एक तो जल्दी किसी को मिलता ही नहीं और मिल भी जाए तो सुवर्ण पात्र के सिवा और किसी पात्र में ठहरता ही नहीं, तुरंत फट जाता है। ठीक ऐसी ही बात धन की भी है। धन भी सुगमता से प्राप्त नहीं होता और यदि उत्तराधिकार आदि में कहीं से अचानक मिल जाए तो भी योग्य पात्र के बिना ठहरता नहीं। कुपात्र के पास कदापि नहीं टिकता। इसलिये जो लोग दरिद्रता से पीछा छुड़ाकर सम्पन्नता की शरण में जाना चाहते हैं,

उन्हें चाहिए कि अपने को उसका पात्र बनाएं।—"पात्रत्वाद्धनमाप्नोति"। अपने मन से सब शंकाओं-कुशंकाओं, भय, निराशा, दुश्चिन्ता, का परित्याग करके यह सिद्ध कर दें कि हम सम्पन्नता के पूरे-पात्र हैं, अधिकारी हैं।

एक आदमी की स्थिति पहले बड़ी ही दीन-हीन थी। खाने-पीने तक का कोई ठिकाना नहीं था। पर कुछ समय बाद वह बहुत धनवान हो गया। एक बार बात-चीत में उसने के लेखक से कहा था—"जब लम्बी दरिद्रता के कारण मेरा मन बहुत ऊब गया तो मैंने दृढ़ निश्चय किया कि मैं अब अधिक समय तक दरिद्र नहीं रह सकता। मैं धनवान बनूंगा।" यही बात मेरी समझ में भली-भान्ति बैठ गई थी कि दरिद्रता सिवाए एक मानसिक रोग के और कुछ नहीं है और जैसे भी हो मुझे इस रोग से पीछा छुड़ा लेना चाहिये।

इसके बाद उसने सुप्त शक्तियों को जगाना—उन पर विश्वास करना, और सदा अपने धनवान् होने का विचार करना आरम्भ किया। उसने निराशा को भगाकर अपने मानस मन्दिर में आशा की देवी की प्रतिष्ठा और स्थापना की। उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि मैं अवश्य धनवान् बन सकता हूं—धनवान् बनूंगा। मैं दुनिया में अवश्य कोई महत्वपूर्ण कार्य कर दिखाऊंगा—कोई महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए ही मैं इस धराधाम पर आया हूं। इस प्रकार निरन्तर चिन्तन द्वारा उसने दरिद्रता के भाव को मन से निकालकर दूर भगा दिया। वह कभी भी यह विचार मन में नहीं लाता था कि मैं किसी कार्य में असफल होऊंगा। अब सफलता और सम्पन्नता ही उसके लक्ष्य थे। मानसिक भावों के इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि बहुत शीघ्र ही धनवान् बन गया। परन्तु आप यह सोचने की भूल मत कीजियेगा कि केवल मन के भाव मात्र बदलने से वह धनवान् हो गया। नहीं, उसने इसके इलावा अपने को सब प्रकार से योग्य बनाने का प्रयत्न किया। वह कभी भी अपना रुपया बेकार की चीजों पर नहीं खर्चता था। छोटी-छोटी रकमों के खर्च में भी वह लापरवाही नहीं करता, उन्हें बचाता। जब उसकी अवस्था ठीक नहीं थी तो वह बहुत ही सस्ती और मामूली चीजें खाता था। आवश्यकता

पड़ने पर मीलों पैदल चला जाता और कभी भी बस या ट्राम पर न बैठता। परन्तु जबसे उसने अपने मनोभावों को बदलने का यत्न किया तब से वह अच्छे भोजनालयों में भोजन खाने लगा और सम्पन्न लोगों की तरह अच्छे मकानों में रहने लगा। वह अच्छे-अच्छे लोगों से मिलने लगा और समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने का प्रयत्न करने लगा। इन सब का परिणाम यह हुआ कि उसे बहुत-सी नई-नई बातें मालूम होने लगीं और लोगों से उसे तरह-तरह की सहायता मिलने लगी। अब यह बात उसकी समझ में पूरी तरह बैठ गई कि मेरे पहले के कष्टों का कारण मेरे संकुचित विचार ही थे, जो मुझे आगे नहीं बढ़ने देते थे। अब दरिद्रता और निराशा के लिए उसके द्वार सदा-सदा के लिये बंद हो चुके थे।

जिन लोगों का हृदय संकुचित और मन सदा दुखी रहता है, वे कभी भी सुखी नहीं हो सकते। ऐसे लोग यदि कभी कुछ धन इकट्ठा कर भी लेते हैं तो केवल कंजूसी और तरह-तरह के शारीरिक कष्ट झेलकर। पर इस प्रकार धन इकट्ठा कर लेना भी निर्धन रहने जैसा ही है। यदि हमारे पास रुपया है और हम उसे खाने-पहनने या योग्य पात्र को दान देने में खर्च नहीं करते तो उसका होना या न होना—दोनों बराबर हैं। हमारे समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जिनके पास हजारों लाखों रुपए होंगे, पर जो अपने या अपने बीवी-बच्चों के बीमार पड़ने पर इकन्नी भी दवा-दारू के लिए खर्च करने को तैयार न हों। कुछ ऐसे भी होंगे, जो काफी रुपए पास होने पर भी, सर्दी में ठिठुरते रहेंगे किन्तु एक गर्म कोट नहीं सिलवाएंगे। यदि विचार करें तो इन लोगों में और अति दरिद्र लोगों में कुछ भी तो अन्तर नहीं है। हां, कुछ अन्तर है तो बस इतना ही कि निर्धन के पास धन नहीं होता और धनी कंजूस के पास अपने ही मन को समझाने के लिए धन होता है। जैसे धन के न होने से निर्धन व्यक्ति तरह-तरह के शारीरिक तथा मानसिक कष्ट उठाया करता है, वैसे ही कंजूस भी। फिर धन हानि के भय से कंजूस निश्चिन्त भी नहीं हो सकता। वह तो सदा इस बात की चिन्ता में रहता है कि कहीं मेरा एक भी पैसा गुम न हो जाए और जहां

तक हो सके, मेरा धन बढ़ता ही रहे। परन्तु वास्तव में ऐसी विचारधारा वाले मनुष्य सफलता कम ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि ऐसे लोग अपना स्वभाव थोड़ा-सा बदल लें और थोड़ी सी उदारता से काम लें तो बहुत कम समय में ही वे सम्पन्न हो सकते हैं। सच्ची बात तो यह है कि विशाल तथा उदार हृदय ही धन को भली प्रकार अपनी ओर खींच सकता है। दुःखी तथा संकुचित हृदय से तो धन वैसे ही परे रहता है। सदा प्रसन्न रहने से तथा सदा अपने हृदय में उच्च आशाएं रखने से मनुष्य अवश्य सफल होता है। अच्छी आशाएं ही मानो सफलता की कुंजी है और बुरी आशाएं असफलता को निमंत्रित करती हैं।

अच्छी आशाएं ही मनुष्य का सच्चा जीवन है। मनुष्य को सफल बनाने के लिए जिन-जिन बातों की आवश्यकता होती है उनमें सदाशा ही प्रधान है। दूसरी ओर निराशा अति हानिकारक एवं घातक होती है। यदि दुर्भाग्य से किसी मनुष्य का धन, सम्पत्ति तथा मान-मर्यादा सभी कुछ नष्ट भी हो जाए तो फिर भी वह अपने साहस एवं सदाशाओं द्वारा इन वस्तुओं को पुनः प्राप्त कर लेगा और अपने दिन फेर लेगा। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह कभी निराश न होकर सदा धैर्य से काम ले और अपने मन में केवल ऊंची आशाओं को ही स्थान दे। उसे यह बात कभी अपने मन में न लानी चाहिए कि उस के सर्वनाश को रोकने में कोई भी साधन सफल नहीं हो सकता।

हमारी असफलताओं का मुख्य कारण यही होता है कि हमारे मन में निराशा तथा सन्देह भरा होता है। इस लिए यदि आप अपनी हीनावस्था से निकल कर सुखी तथा सम्पन्न होना चाहते हैं तो आप को चाहिए कि अपने हृदय को सुदृढ़ बनाए रखें। विचार शक्ति का नाश न होने दें। इसके लिए आप को केवल यही करना होगा कि सदा अच्छी-अच्छी बातों को ही मन में स्थान दें। किसी वस्तु का निर्माण करने से पहले कारीगर उसका ढांचा बनाता है। ऐसे ही यदि आप सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको भी पहले मन में उसका एक ढांचा बनाना पड़ेगा। यदि आप अपना दरिद्रता पूर्ण जीवन छोड़कर सुखी जीवन में आना चाहते हैं तो उस जीवन के आकार को पहले से अपने मन में स्थापित करना

होगा। प्रत्येक ओर से निराश व्यक्ति यदि अपनी विचार धारा को थोड़ा-सा साहस की ओर मोड़ दे तो वह देखेगा कि उस में बहुत शक्ति है और इस बात का ज्ञान होते ही उसकी सारी विचारधारा बदल जाएगी। फिर वह नये उत्साह से सुखी जीवन की ओर चल निकलेगा।

एक परिवार के सदस्यों ने इसी प्रकार अपनी विचारधारा को बदल कर अपनी सामाजिक स्थिति को बहुत ऊंचा उठा लिया था। पहले वे लोग अति दरिद्र थे और यहां तक निराश हो चुके थे कि उन्हें विश्वास हो गया था कि "सफलता आदि वस्तुएं केवल दूसरों के लिए ही हैं, हमारे भाग्य में वह वस्तु लिखी ही नहीं गई। अतः हम सदा हीनावस्था में ही पड़े रहेंगे।" उनकी दशा इतनी बिगड़ चुकी थी कि उनके मकान में से भी प्रत्येक ओर दरिद्रता ही टपकती थी। भला ऐसी दशा में रहकर वे उन्नति कैसे कर सकते थे! ऐसे ही एक दिन बच्चों की माता ने किसी पुस्तक में पढ़ा कि दरिद्रता केवल एक प्रकार का रोग है। बस यही बात उसके मन पर प्रभाव डाल गई और उसने अपना स्वभाव बदलना आरंभ कर दिया। इस प्रकार उसने धीरे-धीरे अपने मन से सब प्रकार के मिथ्य विश्वासों तथा निराशाओं को निकाल दिया और प्रसन्न-चित्त रहकर अच्छी आशाएं मन में रखने लगी। परिणाम स्वरूप उसमें तथा उसके बच्चों में एक प्रकार के नए जीवन की अभिलाषा जाग उठी। अब उन लोगों को देखकर दूसरों को दुःख न होता था और उन्हें सारा वातावरण साहस पूर्ण जान पड़ने लगा। उन्होंने अन्धकार से निकल कर प्रकाश की ओर बढ़ने का निश्चय कर लिया और सारे घर भर का वातावरण ही बदल गया। इस प्रकार उन्होंने दरिद्रता तथा निराशा को दूर फेंक कर, साहस तथा धैर्य से काम लेकर लक्ष्मी देवी को निमंत्रण दिया।

इन सब संस्कारों के बदलते ही धीरे-धीरे वह परिवार उन्नति करते-करते उस अवस्था पर पहुंच गया जिस को संसार सौभाग्यपूर्ण मानता है। ठीक ढंग से रहने के कारण लड़कों का पिता भी दूने उत्साह से काम करके उन्नति प्राप्त करने लगा। और लड़कों में भी साहस का संचार होने लगा। इससे उनकी दशा इतनी बदल गई कि सहज में वह पहचाने भी

न जाते थे। इस प्रकार प्रत्येक ओर से उनकी काया पलट गई और दुःख-दरिद्रता के स्थान पर अब वैभव ने वहां आकर डेरा जमा लिया।

हमें वैसा ही कार्य करना चाहिए जैसा कि हम बनना चाहते हैं। यदि हम धनवान बनना चाहते हैं तो हमें पहले अपने भावों को उन जैसा बनाना चाहिए। हमें अपने व्यवहार से यह प्रमाणित करना होगा कि हम धनवान् बनने के योग्य हैं। इस विषय में हम एक उदाहरण देते हैं। मान लीजिए एक अच्छा नट रंगभूमि में एक ऐसे व्यक्ति का नाट्य करना चाहता है जो बहुत ही भाग्यशाली है। अब यदि वह नट मैले तथा फटे पुराने वस्त्र पहन कर निराशा से परिपूर्ण मुर्दा-सा बनकर रंगमंच पर आकर कहता है, "मैंने जो कार्य-भार संभाला है वह मेरे लिए उपयुक्त नहीं है। मेरे जैसा मनुष्य इस कार्य को भली प्रकार नहीं निभा सकेगा। मैं कभी धनवान् नहीं हो सकता और तो क्या मुझे स्वयं भी विश्वास नहीं है।" आदि आदि। अब आप ही विचार कीजिए ऐसे अभिनय का दर्शकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या वे समझ सकते हैं कि ऐसा व्यक्ति कभी जीवन में सफल हो सकेगा? क्या लोग उसे लक्ष्मी का पात्र होने के अयोग्य न समझेंगे?

मान लीजिए एक नवयुवक धनवान् तो होना चाहता है पर सदा अपने मन में यह विचार रखता है कि मैं कभी धनवान नहीं बन सकूंगा। वह सब के सामने अपने भाग्य को कोसता रहता है और स्वयं को अयोग्य तथा दरिद्र प्रमाणित करता है। भला आप ही सोचिए कि क्या ऐसा मनुष्य भी कभी धनवान् हो सकता है? सदा ही दरिद्रता पूर्ण बातें तथा कार्य करने वाला लक्ष्मी के मन्दिर के कैसे प्रवेश कर सकता है?

हम जिस उद्देश्य की प्राप्ति में लगे हों उसकी सिद्धि के लिए प्रथम अत्यावश्यक बात यह है कि हम अपनी विचारधारा भी उसी के अनुकूल बना लें। धनवान् बनने की अभिलाषा करने से पहले हमें अपने मन में यह विश्वास पैदा करना चाहिए कि हमारा जन्म ही धनवान् बनने के लिए हुआ है। हमें समझ लेना चाहिए कि हमारे भीतर ही एक ऐसा अंश है जो सदा सफल बनाता रहेगा और वह हमें अवश्य ही धनवान् बनाकर छोड़ेगा।

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मन से समस्त आशंकाएं तथा सन्देह निकाल दे और असफलता अथवा दरिद्रता को समीप भी न आने दे। जब हम एक बार अपनी विचार-शक्ति पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेंगे तो देखेंगे कि सफलता सन्मुख हाथ बांधकर ऐसे खड़ी है मानो सब कार्य अपने आप सिद्ध होते जा रहे हैं। भय, शंका तथा अविश्वास के कीटाणुओं ने बहुत से सम्पन्न व्यक्तियों का सुख-चैन छीनकर उनका सर्वनाश कर दिया है। यदि सब दरिद्र और दुखी लोग एक बार दुःख तथा दरिद्रता को झकझोड़ परे फेंक दें और अपने मन में यह विश्वास कर लें कि उनके कष्टों का नाश हो गया है एवं सदा प्रसन्न तथा सुखी रहेंगे तो अवश्य ही थोड़े से समय में संसार के भीतर बहुत बड़ा परिवर्तन दिखलाई देने लगेगा।

प्रत्येक बालक को जन्म से ही यह पढ़ाया जाना चाहिए कि वह धनवान तथा भाग्यवान बनेगा। उसे यह विश्वास दिला देना चाहिए कि संसार की समस्त अच्छी वस्तुएं उसी के लिए हैं। बाल्यकाल से ऐसी शिक्षा पाकर युवक होने पर वह कभी दुखी तथा दरिद्र न रह जाएगा। सुख की आकृति को प्रथम मन में बिठा लेना चाहिए तभी वह प्रत्यक्ष होकर सामने आएगा।

यदि कोई युवक वैद्य या मास्टर बनना चाहता है तो वह शुरू से ही वैसी शिक्षा ग्रहण करता है। उसका सारा समय उस विद्या को जानने में ही लगता है। यहाँ तक कि उसके संगी-साथी भी डाक्टर ही होते हैं। लेकिन यदि वह डाक्टरी भूल कर कानून की पुस्तकों में रुचि रखने लगे और वकीलों से ही मित्रता करे, तो क्या वह डाक्टर बन सकेगा ? कदापि नहीं। ठीक इसी तरह यदि कोई व्यक्ति सुखी और सम्पन्न बनना चाहता है तो उसे अपना सारा ध्यान और सारी शक्तियां इसी ओर लगानी चाहिए और मन से दरिद्रता के विचार दूर कर देने चाहिए।

दरिद्रता और दुख किसके जीवन में नहीं आते ? पर हमें सदा उनसे अपने को बचाना चाहिए क्योंकि हम परिस्थितियों के दास नहीं, स्वामी हैं। अपने मन में यह विश्वास जमा लेना चाहिए कि किसी भी कठिन परिस्थिति का सामना हम कर सकते हैं। हमारा जन्म विजय के लिए हुआ है। संसार की प्रत्येक अच्छी वस्तु को प्राप्त करने की शक्ति हम में

है। प्रयत्नों से हम जीवन की सब आपत्तियों पर विजय पा सकते हैं।

जीवन में दरिद्रता से छुटकारा पाने के लिए हमें मन से दरिद्रता का नाश कर देना चाहिए। अपने आचार-विचार, रहन-सहन, बोल-चाल किसी से भी दरिद्रता प्रकट नहीं करनी चाहिए बल्कि सम्पन्नता का विचार प्रकट होना चाहिए। हमारा जीवन लोगों के लिए वैभव का प्रतीक बन कर खड़ा हो। इस तरह वैभव के विचार मन में लाने से आप देखेंगे कि सचमुच जीवन में सुख और आनंद का संचार हो गया है। तब दरिद्रता आपके लिए दूर की वस्तु रह जायेगी और आपके कदम सम्पन्नता व सफलता की ओर ही बढ़ते जायेंगे।

४

सम्पन्नता

उत्तम पुरुषों की सम्पत्ति का मुख्य प्रयोजन यही है कि औरों की विपत्ति का नाश हो। —कालिदास

जहां सुमति तहां सम्पति नाना। —तुलसीदास

"गरीब वह है जो गरीबी के विचारों से ग्रस्त है।" वास्तव में सम्पन्नता सम्पन्न मन की उपज है जबकि निर्धनता निर्धन मन की। यदि हम जीवन में सुखी और सम्पन्न बनना चाहते हैं तो हमें अपना लक्ष्य सम्पन्नता ही बनाना चाहिए। तब उस ध्येय को छोड़ कोई अन्य विचार अर्थात् निर्धनता का विचार अपने मन में नहीं लाना चाहिए। जब समृद्धि ही हमारा एकमात्र ध्येय हो जायेगा तो दिन-रात उसी का ध्यान करते, उसी के लिए प्रयत्न करते हुए हम स्वयं ध्येयमय बन जायेंगे। बस, तभी हमारा ध्येय अपने आप हमारी ओर खिचा चला आयेगा।

हमें विश्वास रखना चाहिए कि जब स्वयं योगेश्वर श्री कृष्ण जी ने हमें सम्पन्नता और प्रसन्नता का रास्ता सुझाया है, तब हम निर्धन कैसे रह सकते है? सच तो यह है कि जब हम सृष्टि और इसके रचने वाले ईश्वर से एकता का अनुभव कर लेंगे, तब हमें दरिद्रता का अनुभव नहीं होगा। दुख और दरिद्रता तभी आती है जब हम अपने आप को इस संसार में अकेला और तुच्छ समझने लगते हैं—अर्थात् अपने और उस महान् ईश्वर के सम्बन्ध को भुला देते हैं।

कई लोग सम्पन्नता के बारे में बड़े भ्रामक विचार रखते हैं। वे

सोचते हैं कि संसार में सभी व्यक्ति सम्पन्न नहीं बन सकते, केवल कुछ गिने-चुने भाग्यशाली ही सुखी जीवन बिता सकते हैं। किन्तु यह विचार जितना भ्रामक है उतना ही हानिकारक भी है। विधाता ने तो सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के लिए सुख-सुविधा जुटाई है। हमारा यह विचार कि कुछ लोग ही सुखी रह सकते हैं—विधाता की शक्ति पर सन्देह प्रकट करता है। सत्य तो यह है कि सृष्टि में सबके लिए सुख के साधन भरे पड़े हैं। कमी है केवल साहसी व आत्मविश्वासी व्यक्तियों की जो अपने प्रयत्नों से उन भण्डारों को खोजें और प्राप्त कर लें।

उदाहरण के लिए भोजन को लीजिए। यह हमारे जीवन का सबसे अधिक आवश्यक पदार्थ है, क्या कोई कह सकता है कि संसार में खाद्य-पदार्थों की कमी है? पृथ्वी का कण-कण अनगिनत खाद्य पदार्थों से भरा पड़ा है। फिर भी संसार में खाद्य समस्या क्यों है? अपने भारत देश को ही देखिये जहाँ खाद्य समस्या ने अत्यन्त भयंकर रूप धारण किया हुआ है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस देश की भूमि में इतनी सामर्थ्य है कि यह सब देशवासियों को भरपेट खिलाकर भी शेष बचा सके! तो क्या कारण है कि हमारी खाद्य समस्या हल नहीं होती? इसका कारण यही है कि हम इस भूमि की खाद्य-सामग्री का पूरा लाभ नहीं उठाते। भूमि के चप्पे-चप्पे में छिपी वस्तुओं की खोज नहीं करते। इसीलिए हम उनसे वंचित रह जाते हैं।

इसी तरह तेल का भी उदाहरण लिया जा सकता है। पहले जलाने के लिए लोग तिलहन के तेल का ही प्रयोग करते थे। पर बढ़ती आबादी के साथ आवश्यकताएँ भी बढ़ीं और लोगों ने जलाने के लिए मिट्टी के तेल का लिया। चूंकि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी होती है। अब लोगों के परिश्रम के फलस्वरूप ही बिजली का भी आविष्कार हो गया है।

जरा सोचिए, अगर ये सब सम्पत्ति पृथ्वी में विद्यमान न होती, तो भला मनुष्य कैसे उसे खोज सकता था? ये सब नवीन आविष्कार ही इस का स्पष्ट प्रमाण हैं कि सृष्टि में हमारी हर आवश्यकता की पूर्ति संभव है।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन जब मरने लगा तो लोगों ने उससे पूछा—

"आपने संसार की सब विद्याओं में से कितनी विद्या प्राप्त की है ?" न्यूटन ने उत्तर दिया—"संसार के विद्या-सागर से मैं केवल बूंद मात्र ही ले सका हूँ।" न्यूटन के बाद अनेक बड़े-बड़े वैज्ञानिक हो चुके हैं। पर वे सब भी अपने ज्ञान के विषय में पूछे जाने पर न्यूटन-सा ही उत्तर देते हैं। सचमुच ही यह धरती विद्या और वैभव का अपार सागर है। उसमें डुबकी लगाने की ही आवश्यकता है। अनगिनत अनमोल रत्न यहाँ आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सृष्टि के आरंभ से मनुष्य की अब तक की प्रगति इसका ज्वलन्त प्रमाण है कि विधाता ने हमारे लिए यहाँ सुख के भण्डार भर रखे हैं। उन्हीं भण्डारों का अन्वेषण करते-करते आज मनुष्य कहाँ पहुँच गया है। भूमि, जल, वायु, खनिज-पदार्थ—इन सब प्राकृतिक पदार्थों का आज पहले से दुगुना-चौगुना लाभ उठाया जा रहा है। यह सब ईश्वर की वैभवसम्पन्न सृष्टि का ही तो चमत्कार है। ऐसी सृष्टि में रहकर भी यदि हम अपने दुर्भाग्य को कोसें, तो इसमें दोष किसका ? कल्पना कीजिए एक ऐसे राजकुमार की जो अपने पिता के समृद्ध राज्य को छोड़ दीन-हीन दशा में भटक रहा हो। आप उसे क्या कहेंगे ? अवश्य यही कहेंगे कि दोष उसी का है अन्यथा उसके घर तो राजोचित सब सुख विद्यमान है। ठीक इसी तरह हम भी अपनी निर्धनता के लिए स्वयं दोषी हैं वरन् हमारे परमपिता ने तो हमारे लिए वैभवसम्पन्न सृष्टि बनाई हुई है।

हमारा जीवन सदा प्रसन्न और सुखी रहने के लिए ही बना है। यदि हम सुखी नहीं हैं तो इसका कारण अपने और विधाता के ऊपर अविश्वास ही है। हमें अपने सुखी बनने में विश्वास नहीं इसीलिए हम मन से सुख की आशा न करते हुए सचमुच अपने सुख के द्वार बन्द कर लेते हैं। क्योंकि यह अटल नियम है कि जो आप मन से सोचेंगे और विश्वास करेंगे, वही आपको मिलेगा। ये आकर्षण के नियम गणित के नियमों की तरह अटल हैं। अतएव समृद्ध एवं सुखी बनने के लिए हमें अपनी सब शक्तियां – मानसिक व शारीरिक इस ओर लगानी होंगी और यह विश्वास करना होगा कि संसार में हमारी सब आवश्यकताओं और इच्छाओं के साधन उपस्थित हैं। प्रयत्न करने से वे सुख-साधन स्वयं

हमारी ओर खिंचे चले आयेंगे।

आजकल लोग यह समझने लगे हैं कि संसार में सुख-सम्पन्नता पाने की होड़ लगी हुई है और इसमें वही विजयी होगा जो आगे बढ़ जायेगा। किन्तु यह विश्वास बिल्कुल भ्रामक है। जब संसार में सुख के अपार भण्डार भरे हुए हैं फिर उनके लिए होड़ कैसी? ईश्वर ने तो सब वस्तुएँ हमारी आवश्यकता से बढ़ कर पैदा की हैं। सच पूछिए तो ईश्वर में विश्वास न होने के कारण ही हम व्यर्थ शंकाओं में फंसे रहते हैं। हमारी दशा उस बालक जैसी है जो अपनी माँ से बिछुड़ कर अकेला भयभीत हो जाता है। ईश्वर से अलग होने के कारण ही हम अपने जीवन में अभावों से भयभीत रहते हैं। जिस क्षण हमें यह विश्वास हो जायेगा कि सुख-समृद्धि के दाता ईश्वर से हम एक हैं, बस उसी समय हमारा जीवन समृद्धि से भरपूर हो जायेगा।

मनुष्य उस ईश्वर का अंश है जो सदा सत्-चित् और आनन्द स्वरूप है। अतएव मनुष्य का जीवन सदा प्रसन्न रहने और उन्नति की ओर बढ़ने के लिए ही है। किन्तु फिर भी यदि कई लोग दुःखी और दीन रहते हैं तो इसका कारण वे स्वयं हैं। उनके अपने भय और शंकाएं ही उन्हें ईश्वर की दी प्रसन्नता और समृद्धि से दूर रखती हैं। प्रसन्न और रचनात्मक मन ही सम्पन्नता पा सकता है। शंकाकुल और भयभीत हृदय भी कहीं सम्पन्नता तक पहुँच सकता है?

यह ठीक है कि कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि सुअवसर या लक्ष्मी उसके पास से लौट जाए। पर उनके मन की स्थिति ही ऐसी बनी होती है कि वे उस सुअवसर को पकड़ नहीं पाते। अपनी आशंकाओं और भय से वे अपने मन के द्वार बन्द रखते हैं। तब सफलता किस द्वार से आये? सफलता पाने के लिए हमें अपने मन को उसके लिए तैयार करना होगा। मन से सफलता की चाह करनी होगी। क्योंकि मन में सफलता पाये बिना हम जीवन में सफलता की प्राप्ति नहीं कर सकते। अतः सम्पन्नता के रास्ते में खड़ी बाधाएँ हमारे दरिद्र मन की ही उपज हैं। जब तक हम मन से दरिद्रता के विचार नहीं निकालेंगे, तब तक चाहे हमारा हृदय कितना विस्तृत और मस्तिष्क कितना शक्तिशाली क्यों न

हो, हम जीवन में कभी सम्पन्नता का स्वप्न पूरा नहीं कर सकेंगे और सृष्टि के अपार भण्डारों के बीच रहते हुए भी 'गंगा में ही प्यासे' की तरह दीन और दुखी रह जायेंगे।

हमारा जन्म दरिद्र बने रहने के लिए नहीं हुआ है। परन्तु अपनी शक्तियों और परिस्थितियों का पूरा ज्ञान न होने के कारण हम दरिद्र बने रहते हैं। सच तो यह है कि सम्पन्नता का द्वार सबके लिए खुला है। केवल आवश्यकता है ऐसे सम्पन्न मन की जिसके बल पर कोई भी मनुष्य उस सम्पन्नता के द्वार तक पहुँच सकता है।

सम्पन्न होने की कुंजी यही है कि हम सदा अपने आप को सम्पन्न समझें और भूल कर भी मन में दरिद्रता के विचारों को स्थान न दें। जो व्यक्ति इस प्रकार अपना मन बना लेते हैं उन्हें कभी दरिद्रता का अनुभव नहीं होता। उनके अंग-अंग से उल्लास फूटा पड़ता है। उनसे बातें करने वालों में भी वह उल्लास पहुँच जाता है। वे व्यक्ति संसार को आशामयी दृष्टि से देखते हैं इसलिए सचमुच ही संसार उनके लिए आशा और उल्लास का कारण बन जाता है। इसलिए कई बार धन के अभाव में भी ऐसे व्यक्ति हृदय की प्रसन्नता नहीं खो देते और सदा मुस्कराते हैं। किन्तु इसके विपरीत कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिनके पास संसार का अतुल धन और सुख-साधन रहते हैं पर वे प्रसन्नता के धन से वंचित ही रहते हैं। सम्पन्नता पाकर भी वे प्रसन्न नहीं रह पाते। इसका कारण स्पष्ट है। उन व्यक्तियों का मन सदा स्वार्थ और लालच से भरा रहता है। तब उसमें प्रसन्नता का माधुर्य आये भी तो कैसे? स्वार्थी और लालची व्यक्ति कभी जीवन के उल्लास को नहीं पा सकते।

सम्पन्न बनने के लिए पहले अपने मन को सम्पन्न बनाने की आवश्यकता है। क्योंकि यदि हम सब कुछ पाकर भी अपने को दुखी और दरिद्र ही समझते हैं, तो फिर संसार की कोई भी शक्ति हमें सुखी और सम्पन्न नहीं बना सकती। जब हृदय में ही दरिद्रता का घर बन जाता है फिर जीवन में सुख और सम्पन्नता का प्रवेश कैसे हो सकता है? किन्तु यदि हमारे हृदय में सुख और सन्तोष का आनन्द लहरें ले रहा है और कहीं भी लालच या स्वार्थ का लेश नहीं, तो हम सदा सुखी बने रह सकते

हैं —धन के अभाव में भी धनवान् की तरह प्रसन्न रह सकते हैं। वास्तव में सुख और सम्पन्नता हमारे मन की प्रसन्नता की उपज है। सम्पन्न बनने के लिए हमें हृदय में ही सम्पन्नता का बीज बोना होगा तभी जीवन के उल्लास को हम पा सकेंगे।

हमें अपने हृदय में यह विश्वास दृढ़ करना चाहिए कि हमें जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह इस संसार में ही है और हमारे प्रयत्नों से हमें प्राप्त हो सकती है। हमारे भीतर सम्पन्नता का वह ईश्वरीय स्रोत है जिससे सब प्रकार की प्यास बुझ जाती है। जब इस विश्वास को लेकर हम चलेंगे तब सम्पन्नता अपने-आप हमारी ओर खिंची चली आयेगी। क्योंकि जब मानसिक दशा ऐसी बन जाती है तब बाहरी या सांसारिक परिस्थिति भी स्वयं अनुकूल बन जाती है। इसीलिए तो कहा है—मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। अपने विचारों से हम सौभाग्य या दुर्भाग्य का निर्माण करते हैं। यदि हम सदा यही सोचते रहें कि हम बिल्कुल असमर्थ और अयोग्य हैं और संसार का सुख-वैभव हमारे लिए नहीं बना है, तो सचमुच हम अयोग्य ही बन जायेंगे और सुख-वैभव से दूर हटते जायेंगे। परन्तु यदि हम हृदय में सम्पन्नता का भाव अच्छी तरह जमा लेंगे और समझने लगेंगे कि हम सब प्रकार से समर्थ और योग्य हैं और संसार का सारा सुख तथा वैभव हमारे लिए भी है, तो हम सचमुच-सुखी सम्पन्न बन सकेंगे।

याद रखिए कि हमें भी उसी ईश्वर ने जन्म दिया है जिसने संसार के अन्य भाग्यशालियों और लक्ष्मीपतियों को जन्म दिया है। अतः सम्पन्न और सुखी रहना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यही विश्वास, यही भाव लेकर आगे बढ़िए और आप देखेंगे कि सम्पन्नता और सुख हमें अपनी गोद में लेने के लिए स्वयं आगे बढ़ते आ रहे हैं।

संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो दिन-रात अपने दुर्भाग्य और दरिद्रता की चिन्ता में ही ग्रस्त रहते हैं। वे सदा यही सोचते हैं कि हम बड़े अभागे हैं, हमारा कोई संगी-साथी नहीं। उनका जीवन दुनिया की शिकायत करते ही बीतता है। इनके लिए मानो सृष्टि में कुछ है

ही नहीं और वे कभी कुछ पा ही नहीं सकते। ऐसे लोग भला कब सुखी या सम्पन्न हो सकते हैं ? वे चाहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। उनकी इच्छा तो है सम्पन्नता की ओर और पांव हैं दरिद्रता की ओर। ऐसे व्यक्ति यदि कभी सुखी न हो सकें तो इसमें आश्चर्य क्या है। हम स्वयं ही अपने सुख और प्रसन्नता को दरिद्रता भरे हृदय की कारागार में बन्दी कर लेते हैं, तब सुख और सम्पन्नता पाने की आशा कैसे हो सकती है ? हमारी दशा ठीक उस पक्षी के समान हो जाती है जो जानबूझ कर अपने आपको पिंजड़े में बन्द कर लेता है और फिर उससे बाहर निकलने के लिए व्यर्थ ही पंख फड़फड़ाता और सिर पटकता रहता है।

कुछ लोगों की प्रकृति ऐसी होती है कि वे चारों ओर सुख और प्रसन्नता ही देखते हैं। उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास होता है और परिस्थितियों पर विजय पा लेने का भरोसा। वे दृढ़-चित्त, निर्भय और उत्साही होते हैं। उन्हें स्वप्न में भी यह विचार नहीं आता कि उन्हें जिस चीज की आवश्यकता होगी वह नहीं मिलेगी। उनके लिए सभी आवश्यक चीजें पा लेना उतना ही सहज होता है, जितना साँस लेना। बस, ऐसे व्यक्ति ही वास्तव में सम्पन्नता का रहस्य पा लेते हैं। उनके लिए संसार में कुछ भी अभाव या कमी नहीं रहती।

सम्पन्नता का मधुर फल प्राप्त करने के लिए हमें अपने हृदय को उदार और प्रसन्न बनाना होगा। संकीर्णता और दरिद्रता के विचारों से छुटकारा पाना होगा। तभी हम सुखी जीवन बिता सकेंगे। हमें विश्वास करना चाहिए कि हम उस परम सम्पन्न और उदार पिता की प्यारी सन्तान हैं, जो कभी हमें कष्ट में नहीं रखना चाहता और हमारी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए तैयार रहता है। इस विश्वास के जन्म के साथ ही हमारे जीवन में सम्पन्नता के द्वार खुल जायेंगे।

ईश्वर ने सबको सुखी और सम्पन्न जीवन जीने के लिए बनाया है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों—अवश्य संसार के सब मनुष्य सुखी होंगे। ईश्वर की सृष्टि का विधान यही है। पर यह तभी हो

सकता है जब हम स्वयं अपने-आप को उसके लिए तैयार करें। हम अपने हृदयों में सम्पन्न जीवन का प्रकाश भरें। हम अपने मन में सम्पन्नता के ही विचार लायें और सब प्रकार की पशुता को मिटा कर मनुष्यता के गुण अपनायें। बस तभी ईश्वर का कार्य पूर्ण होगा और सृष्टि में सम्पन्नता का फल सबको प्राप्त होगा।

५

निद्रा

निर्दोष नींद आने के लिए जाग्रतावस्था में आचार-विचार निर्दोष होने चाहिये । निद्रावस्था जाग्रतावस्था की स्थिति जांचने के लिए एक आइना है । —गांधी

जिसका सोना और जागना ठीक है, योग उसके दुःखों का नाश कर देता है । —गीता

मनोविज्ञान यह बताता है कि सोते समय हमारे मन में जो विचार होते हैं वे निद्रा में अधिक वेग से मन में घूमते रहते हैं । इस तरह नींद में भी हमारा मन कार्य करता रहता है । बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिकों का यह भी विश्वास है कि हमारे चेहरे पर जो झुर्रियां या अन्य बुढ़ापे के चिह्न बनते हैं वे जैसे हमारी जाग्रत अवस्था में बनते हैं वैसे ही सोने की अवस्था में भी बनते हैं । अर्थात् सोते समय जैसी हमारे मन की दशा होगी —प्रसन्न या चिन्तित—उसका वैसा प्रभाव निद्रा में भी हमारे शरीर पर पड़ता रहेगा ।

बहुत से व्यक्ति निद्रा के इस महत्त्व को नहीं जानते । इसलिए जब वे सोने लगते हैं तो अपनी दिन-भर की चिन्ताओं को साथ ही लिये सोते हैं । इसका भयंकर परिणाम यह होता है कि जो आराम और शान्ति उनके शरीर को नींद से मिलनी थी, वह नष्ट हो जाती है और रात को भी उनका शरीर स्वस्थ या सुखी नहीं रह पाता ।

संसार में हजारों और लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो दिन-भर घोर परिश्रम

में जुटे रहते है। यहाँ तक कि उनका जीवन बिल्कुल अस्वाभाविक और मशीन-जैसा बन जाता है। वे लोग जब दिन-भर का काम समाप्त कर सोने लगते हैं, तब सब चिन्तायें आकर मन को घेर लेती हैं। उन चिन्ताओं में डूबते-उतरते या तो उन्हें नींद ही नहीं आती और यदि आती भी है तो बहुत देर बाद। अर्थात् जब उनका दिमाग हद से ज्यादा थक जाता है, तब हताश होकर वे सो जाते हैं। किन्तु सोते हुए भी उन व्यक्तियों को आराम नहीं मिलता। चिन्तित मन नींद में भी चिन्तित ही रहता है! फल यह होता है कि निद्रा उनके लिए अभिशाप सिद्ध होती है और प्रातःकाल स्वस्थ और प्रसन्न-चित्त उठने की बजाय वे अधिक अस्वस्थ और उदास होते हैं।

निद्रा शरीर के लिए वरदान है। इसका सबसे बड़ा महत्त्व यही है कि सारे दिन के परिश्रम के पश्चात् हम निद्रा से पुनः शरीर की खोई शक्ति लौटा लेते हैं और अगले दिन के लिए बिल्कुल तैयार होकर उठते हैं। किन्तु यह सब तभी हो सकता है जब हम चिन्ता-रहित शान्त मन से सोयें। वरन् बिस्तर पर साथ जाने वाली चिन्तायें हमें कभी आराम नहीं लेने देंगी। तब निद्रा का वरदान हमारे लिए अभिशाप बन जायेगा।

निद्रा के वरदान को प्राप्त करने के लिए हमें अपने मन को उसके लिए तैयार करना होगा। मन से सब प्रकार की चिन्तायें, विचार आदि एकदम दूर करने होंगे। एक तरह से मन का स्नान करना होगा जिससे सब शोक व दुख मन से धुल जाएं और एक निर्मल प्रसन्नता व शान्ति की लहर हृदय में भर जाये। तब जो निद्रा हम लेंगे, वह सचमुच हमारे स्वास्थ्य और प्रसन्नता के लिए वरदान सिद्ध होगी। दूसरे दिन उठ कर हम दुगुने उत्साह और बल से काम करेंगे।

दिन-भर काम करते हुए हमारे मन पर चिन्ताओं का और शरीर पर थकावट का बोझ पड़ जाता है। इस बोझ से मुक्ति पाने के लिए ही ईश्वर ने रात को निद्रा की व्यवस्था की है। अतः हमें सोते समय न तो कोई चिन्ता होनी चाहिए, न क्रोध होना चाहिए और न ही किसी भी तरह की ईर्ष्या होनी चाहिए। हमारे चेहरे पर कोई त्यौरी या चिन्ता का भाव नहीं होना चाहिए। बल्कि मन की शान्ति चेहरे से प्रकट होनी

चाहिए। तभी हम निद्रा का पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं।

दिन के समय कई ऐसी बातें हो सकती हैं जिनसे मन क्रोधित या दुखी हो जाता है। लेकिन कुछ देर बाद ही वह क्रोध या शोक मन से हट जाता है। पर यदि रात को सोते समय हम उन्हीं बातों का फिर से ख्याल करेंगे तो अवश्य ही मन में फिर वही चिन्ता या क्रोध जगा लेंगे। दिन में मन में कोई दुष्ट भाव आने पर, किसी दूसरे काम में लग जाने से उससे एक सीमा तक छुटकारा मिल जाता है किन्तु रात को जो दुष्टभाव मस्तिष्क में छा जाता है वह तो नींद में भी अपना विनाशकारी—प्रभाव डालता रहता है। दिन को तो हमारा मन दुखी हुआ ही था, अब रात को भी हम स्वयं अपने आप को दुखी करने पर तुल जाते हैं। हम यह जानते हैं कि दुख या क्रोध का हमारे शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। फिर क्यों हम अपने पांवों पर आप कुल्हाड़ी मारते हैं? इतना छोटा-सा जीवन हमें मिला है। इसमें यदि दिन और रात चिन्ताओं में पड़ कर हम इसे नष्ट करते रहेंगे, तो क्या यह जीवन-दाता ईश्वर के प्रति अपराध न होगा?

यह ठीक है कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसे चिन्ता के क्षण अवश्य आते हैं। किन्तु उन चिन्ताओं को सोते समय भी साथ रखना अत्यन्त घातक होता है। सोने के समय हमें सब अप्रिय और उत्तेजक बातों को भूल कर केवल अपने ईश्वर का स्मरण करना चाहिए ताकि हम निर्मल हृदय से पूरा आराम ले सकें और नई कठिनाइयों का सामना करने के लिए अगले दिन तरोताजा होकर उठें।

सुप्रसिद्ध महात्मा सन्त पाल का यह उपदेश—"यदि दिन के समय किसी पर क्रोध आ जाय तो भी वह क्रोध सूर्यास्त से पहले ही शान्त हो जाना चाहिए"—स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। क्रोध ही क्या ईर्ष्या, बदले की भावना, लालच या चिन्ता—कोई भी उत्तेजक भाव उस समय हमारे मन में नहीं होना चाहिए। तब तो हमारा हृदय इतना सरल और मस्तिष्क इतना शान्त हो जाना चाहिए मानो शिशु माँ की गोद में सोने जा रहा हो।

यदि कोई व्यक्ति चिन्ताओं और स्वास्थ्यनाशक विचारों से अपना

पीछा नहीं छुड़ा पाता तो उसे चाहिए कि सोने से पहले वह कोई अच्छी पुस्तक पढ़ ले। इसका फल यह होगा कि धीरे-धीरे उसकी सब चिन्ता दूर हो जायेगी और मन निर्मल हो जायेगा। उस समय जीवन का आदर्श और सुन्दर रूप आपके सामने प्रकाशित हो उठेगा। उसके प्रकाश में आपको दिन के अप्रिय कामों के लिए स्वयं लज्जा आने लगेगी और आप का हृदय पश्चात्ताप से भर जायेगा। इस तरह सोने के समय आप उस अमूल्य पुस्तक से अपना मन भी निर्मल कर लेंगे और भविष्य के लिए अपना आचरण भी सुधार लेंगे।

"हमारा जीवन शीघ्र ही सुखी और सम्पन्न होगा"—यह आशाप्रद विचार ही सोते समय हमारे मन में होना चाहिए। हमें उस समय किसी महापुरुष के उज्ज्वल आदर्श को याद करना चाहिए और मन ही मन यह ठान लेना चाहिए कि हम भी उस जैसा उच्च जीवन बनायेंगे। ऐसे प्रेरणा-दायक विचारों का मन पर चमत्कार की तरह प्रभाव होता है। यदि रोज रात को हम अपने उज्ज्वल जीवन का आदर्श याद रखेंगे तो दूसरे दिन अवश्य ही उस आदर्श की ओर कुछ कदम बढ़ायेंगे।

प्रायः अधिक पढ़े-लिखे और काम-काजी व्यक्ति को हर समय कुछ न कुछ सोचते रहने की आदत पड़ जाती है। यहां तक कि दिन का काम समाप्त करके रात को सोने के समय भी वे विचारों से पीछा नहीं छुड़ा पाते हैं। परिणाम यह होता है कि जितनी तेजी से दिन में वे सोचते थे वैसे ही रात को भी सोचते रहते हैं। उनका सोना और न सोना बराबर हो जाता है। अतः सोने के बाद भी वे मन पर बहुत बड़ा बोझ लेकर उठते हैं। ऐसे लोगों की मानसिक और शारीरिक शक्ति का शीघ्र नाश होता है। इस सर्वनाश को रोकने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि ज्यों ही वे दिन का काम समाप्त करें, त्यों ही वे उसके बारे में सोचना बन्द कर दें। दुकान के किवाड़ बन्द करने के साथ वे अपने मन के किवाड़ भी बन्द कर दें। फिर जैसे काम के पश्चात् काम के कपड़े उतार कर रख दिये जाते हैं, उसी तरह दिन भर की सोची हुई बातें मन पर से हटा देनी चाहिएं। उस समय अपने मित्रों या बच्चों के साथ बातचीत या अन्य मनोरंजन में लग जाना चाहिए। किसी खेल में या किसी अच्छी

पुस्तक में अपनी सब चिन्ताएं भूल जाना चाहिए। खुली हवा में टहलते हुए सन्ध्या की शोभा देखनी चाहिए। यानि हर संभव तरीके से अपने मन को प्रफुल्लित और चिन्ता-रहित बनाना चाहिए। मन के दास न बनकर हमें उसके स्वामी बनना चाहिए और प्रयत्न पूर्वक उसे शान्त व प्रसन्न रखना चाहिए।

यदि सोने के कमरे में अपने बिस्तर के सामने यह लिखकर लगा दें कि—"यहां कोई बात सोचनी नहीं चाहिए"—तो सचमुच हम निद्रा से मिलने वाला आराम अच्छी तरह पा सकेंगे।

बिस्तर पर देर तक करवटें बदलते रहने और देर तक निद्रा न आने का प्रमुख कारण चिन्ता या अशान्ति ही होता है। इसलिए सोने से पहले चिन्ताओं को दूर हटा देना परम आवश्यक है। तब आप देखेंगे कि कितनी जल्दी निद्रा आ जाती है। प्रसन्न एवं शान्त हृदय मनुष्य के लिए निद्रा का आना उतना ही सहज और सुखद होता है जितना एक अबोध बालक के लिए। और ऐसी निद्रा से न केवल मन ही बल्कि शरीर भी स्वस्थ एवं प्रसन्न रहता है।

सोने से पहले सब प्रकार की चिन्ताओं से दूर रहने का अभ्यास डालना सरल काम नहीं। यह भी एक प्रकार की कला है और इसके लिए बड़े अभ्यास की आवश्यकता है। सोने के समय हमें इतना अधिक प्रसन्न और निश्चिन्त हो जाना चाहिए मानो हम ईश्वर के समीप पहुंच गये हैं। ईश्वरीय उल्लास, स्वर्गीय सुख हमारे हृदय में भर जाना चाहिए। यही सच्चे आनन्द का मूलमन्त्र है और इसीसे हमें सुखद निद्रा आ सकती है।

जब आप इस तरह निश्चिन्त और प्रसन्न होकर सोएंगे, तब सवेरे उठने पर आप को अपनी प्रसन्नता और स्वास्थ्य को देख आश्चर्य होगा। आपको ऐसा अनुभव होगा मानो शरीर में नया बल और हृदय में स्वर्गीय आनन्द उमड़ आया है। तब आप नवीन उत्साह से अपने दैनिक कामों में जुट जाएंगे और पहले की अपेक्षा कहीं अधिक काम कर सकेंगे। धीरे-धीरे इसके अभ्यास से आपका जीवन ही बदलता जायेगा। अब आपको चारों ओर आशा एवं सफलता के दर्शन होंगे और चिन्ता या भय मन में

धुंधले पड़ जायेंगे। दिन-प्रतिदिन आपके विचार अधिक उच्च होते जायेंगे और जीवन एक नया संदेश देने लगेगा। विचारों की उन्नति के साथ शरीर का भी स्वास्थ्य बढ़ेगा। सदैव शरीर में यौवन एवं शक्ति का अनुभव होगा और आयु भी बढ़ जायेगी। सार यह कि समस्त जीवन एक सुन्दर एवं सफल जीवन बनता जायेगा।

प्रत्येक मनुष्य में ईश्वरीय शक्तियों का बीज होता है। परन्तु जैसे बीज का विकसित होने के लिए अनुकूल जलवायु की आवश्यकता होती है उसी तरह मनुष्य की ईश्वरीय शक्तियों के विकास के लिए उचित वातावरण की आवश्यकता रहती है। निद्रा भी उस उचित वातावरण को बनाने वाला एक प्रमुख साधन है। यदि कोई मनुष्य रात को शान्त होकर आराम नहीं कर पाता तो वह कभी भी अपनी सब योग्यताओं व शक्तियों का विकास नहीं कर सकेगा। क्योंकि थका हुआ शरीर और चिन्तित मस्तिष्क कोई भी काम नहीं कर सकता। संसार के बड़े-बड़े गणितज्ञों, वैज्ञानिकों और ज्योतिषियों ने भी इसकी महत्ता को स्वीकार किया है। जिन प्रश्नों को वे बहुत सोच-विचार के बाद भी नहीं सुलझा सके, उन प्रश्नों का उत्तर एक पूरी नींद लेने के बाद अपने आप मिल गया।

चरित्र-निर्माण में भी निद्रा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज का मनोविज्ञान यह बताता है कि बहुत-सी नैतिक शिक्षा हमें निद्रावस्था में अनजाने ही मिला करती है। इसका कारण यह है कि रात को सोने के समय हमारे मन में जो विचार होंगे वे रातभर हमारे मन में घूमते रहेंगे और पुष्ट होते रहेंगे। सवेरे उठने पर वे ही विचार हमारे दिनभर के आचरण या कामों पर प्रभाव डालेंगे। अतः यदि हम रात को सोते समय अपने विचार उच्च एवं शुभ रखेंगे तो निश्चय ही हमारा आचरण एवं चरित्र उच्च बनेगा। अनेक उन्नतिशील व्यक्तियों ने इसी तरह अभ्यास करके अपने जीवन को अत्यन्त आदर्श एवं उन्नत बना लिया है।

उदाहरण के लिए एक ऐसे निर्धन व्यक्ति की कल्पना कीजिए जिसे चारों ओर से कठिनाइयों ने घेरा हुआ है। यहाँ तक कि उसके लिए अपना और अपने परिवार का निर्वाह करना भी बहुत कठिन हो गया

है। किन्तु इन कठिनाइयों के होते हुए भी वह आशा और विश्वास का साथ नहीं छोड़ता। रोज रात को सोते समय वह इस विश्वास को दुहराता है कि मैं उस ईश्वर की संतान हूँ जो दयालु है। उसकी सृष्टि में रहते हुए एक दिन मुझे भी अपने परिश्रम का फल अवश्य मिलेगा। बस, इन्हीं प्रसन्नतापूर्ण विचारों से वह निश्चिन्त हो सो जाता है मानो ईश्वर की गोद में सो रहा हो। परिणाम यह होता है कि अगले दिन सवेरे वह नये बल और उत्साह से अपने काम में लग जाता है। उसका उत्साह इतना अपार हो जाता है कि कोई भी काम उसे कठिन नहीं लगता। अपनी सफलता के स्वप्न लेते हुए वह विश्वास से काम करता जाता है। फलतः एक दिन आता है कि सचमुच उसकी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और उसका सुख-स्वप्न साकार हो जाता है।

यदि हमारे चरित्र में कोई दुर्बलता या अवगुण हो तो हमें चाहिए कि सोते समय उसका ध्यान न करें। बल्कि अपने गुण एवं शक्ति का ही ध्यान करें। उदाहरणतः यदि हम कायर हों तो हमें वीरता का ध्यान करना चाहिए या यदि हम निरुत्साही हों तो हमें उत्साह का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार गुणों का ही ध्यान करने से फल यह होगा कि धीरे-धीरे उस अवगुण से पीछा छूट जायेगा और हमारे भीतर वह गुण प्रवेश करता जायेगा।

बालकों के हृदय पर इस तरह अनेक उच्च संस्कार डाले जा सकते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक देश में यह प्रथा है कि बच्चों को सोने के समय हर तरह से प्रसन्नचित्त रखा जाता है। हमारे देश में तो माता या दादी इसीलिए सोने से पहले बच्चों को सुन्दर-सुन्दर कहानियाँ, मनोरंजक बातें एवं शिक्षाप्रद कथायें सुनाती हैं ताकि बच्चों के कोमल हृदयों पर वे शुभ संस्कार दृढ़ हो जायें। हमारे देश के प्रत्येक महापुरुष का बचपन माता द्वारा दी शिक्षाप्रद लोरियों में गुजरा है। रामायण और महाभारत की आदर्श कथा सुना-सुना कर ही भारत की मातायें अपने बालकों में भावी जीवन के शुभ बीज डालती हैं। बालक का हृदय गीली एवं चिकनी मिट्टी की तरह होता है। अतः जो बातें उन्हें सोने से पहले बताई जाती हैं उनका उनके हृदय पर अमिट प्रभाव पड़ता है। निद्रा में वे ही बातें

उनके मन में दृढ़ होती हैं और सुबह उठने पर वे ही विचार उनके आचरण पर प्रभाव करते हैं। पाश्चात्य देशों में तो बालकों के शारीरिक रोगों को दूर करने के लिए भी निद्रा के इस उपचार का प्रयोग किया जाता है।

बालकों की आदतों को सुधारने के लिए तो निद्रा से पहले कही गई बातें अचूक सिद्ध होती हैं। उदाहरण के लिए कई बालक बहुत डरपोक होते हैं। भूत-प्रेत की कल्पना करके वे बहुत डरते रहते हैं और प्रायः सोते-सोते डर कर चिल्ला उठते हैं। ऐसे बालकों को यदि नींद से पहले यह बतला दिया जाये कि भूत-प्रेत कोई चीज नहीं और वे व्यर्थ ही चिल्ला कर नींद में उठ पड़ते हैं। उन्हें यह विश्वास दिलाया जाय कि उन्हें डरने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि सब उनके पास सोये हैं और वे निश्चिन्त होकर सो जायें, तो इन सब बातों का बालक के मन पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ेगा। थोड़े ही दिनों में उसका डरपोक स्वभाव छूट जायेगा और वह निर्भीक बन जायेगा।

इसी तरह जो बालक पढ़ाई में सुस्त या कमजोर हो उसे भी सोने से पहले उत्साह और आशा-भरी बातों से चतुर एवं होशियार बनाया जा सकता है। कारण यही है कि सोने के पहले दी गई शिक्षा बालक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाती है। जब बालक कुछ-कुछ सोने लगे उस समय भी बराबर अच्छी बातें बतलाते रहना चाहिए। उसे सोता समझ कर चुप हो जाना भारी भूल है। जब तक बालक गहरी नींद में न सो जाय, तब तक उसे जागता हुआ समझ कर शिक्षा देते जाना चाहिए। उस अर्ध-निद्रित अवस्था में दी गई शिक्षा बालक के कोमल मन पर दुगना प्रभाव करेगी और जाग्रत अवस्था से बढ़कर इसका अच्छा फल प्राप्त होगा। क्योंकि जाग्रत अवस्था में तो बालक आपकी बात को अन-सुनी कर सकता है या इधर-उधर खेल-कूद में उसे भुला सकता है। पर सोने के समय विशेषतः अर्ध-निद्रित अवस्था में वह इनमें से कोई भी काम नहीं कर सकता। अतः इस समय उसे जो भी शिक्षा दी जाती है, वह तत्काल उसे ग्रहण कर लेता है। फलस्वरूप उसके आचरण में इसका सुप्रभाव प्रकट होने लगता है। जो माताएँ इस प्रकार अपने बालकों को

शिक्षा देती हैं, उनके बालक शीघ्र ही सभ्य एवं समझदार हो जाते हैं।

बालक ही क्या प्रत्येक समझदार व्यक्ति इस प्रकार अपने जीवन को उन्नति के पथ पर आगे बढ़ा सकता है। निद्रा के महत्त्व को समझ कर एक बार इसका निरन्तर अभ्यास करके देखिए। कम-से-कम महीने दो महीने तक इस तरह प्रसन्नचित्त और उच्च विचारों को लेकर सोने से आप देखेंगे कि जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन आता जा रहा है। इस प्रकार आप सहज ही अनेक त्रुटियों को दूर कर महान् गुणों को धारण कर सकेंगे।

अतएव सदा सोने से पहले यह दृढ़ निश्चय कर लीजिए कि हमारी आत्मा हमें रात में अधिक बलशाली, अधिक सदाचारी एवं उन्नत बनायेगी। निश्चय कर लीजिए कि अब कोई दुष्ट विचार हमारे मन में नहीं आयेगा। बल्कि सद्विचार ही आयेंगे। हमारा परमपिता ईश्वर हमें शुभ गुणों का वरदान देगा जिससे हमारा जीवन सफल बनेगा। इसका मीठा फल आप जल्दी ही पाएंगे। आप देखेंगे कि सचमुच आपकी रात की सोची बातें दिन में फल ला रही हैं और जीवन प्रगति-पथ पर प्रसन्नता से आगे बढ़ रहा है।

६

मानसिक अवस्था और आरोग्य

शरीर तथा मन दोनों से व्याधि उत्पन्न होती है। दोनों प्रकार की व्याधि का जन्म शरीर तथा मन दोनों से होता है, एक से नहीं।

इसमें सन्देह नहीं कि शारीरिक व्याधि से मानसिक व्याधि और मानसिक व्याधि से शारीरिक व्याधि का जन्म होता है।

—महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १६, श्लोक ८-९

"स्वस्थ मन से ही स्वस्थ शरीर का निर्माण होता है"—इस सूक्ति में अमूल्य अर्थ भरा हुआ है। हमारा शारीरिक स्वास्थ्य हमारे मन पर इसी तरह टिका रहता है जैसे एक भवन अपनी नींव पर। मन के विकार और अस्वस्थ विचार ही शरीर के रोगों का कारण बनते हैं।

शरीर के अस्वस्थ होने का कारण केवल शरीर के विचार को ही समझना, एक भारी भूल है। वास्तव में जैसे नदियों का स्रोत हिमालय है, इसी तरह शरीर के स्वास्थ्य का स्रोत हमारा अपना मन ही है। अतः मन में जैसे विचार होंगे—अच्छे या बुरे—उन्हीं के अनुसार अच्छे या बुरे स्वास्थ्य का निर्माण होगा। जिस व्यक्ति के मानसपटल पर सदा दूषित चित्र ही छाये रहते हैं, वह व्यक्ति स्वयं कभी पवित्र नहीं रह सकता और न ही अपने शरीर को नीरोग अथवा स्वस्थ ही रख सकता है।

स्वास्थ्य का स्रोत अगर कहीं से दूषित होता है, तो वह अपने उद्गम-स्थान से ही होता है और हमारा मन ही वह उद्गम-स्थान है। वैज्ञानिकों ने खोज करके यह बताया है कि हमारी विशेष मनोवृत्तियों का शरीर के विभिन्न अंगों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, बहुत अधिक लालच या स्वार्थपरता का हमारी प्लीहा और यकृत पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जिस व्यक्ति को गुरदे या मूत्राशय की बीमारी हो, वह यदि किसी से बहुत घृणा या क्रोध करेगा तो उसकी बीमारी अधिक बढ़ जायेगी। इसी तरह ईर्ष्या या मत्सर का हमारे जिगर और हृदय पर बहुत कुप्रभाव होता है। भय या चिन्ता की मनोवृत्ति से हृदय पर भयंकर प्रभाव पड़ता है। इससे या तो हृदय की गति अत्यन्त मन्द या तीव्र हो जायेगी। और फिर हमारे शरीर में रक्त का संचार कम हो जायेगा। फल यह होगा कि पाचन-क्रिया ठीक से नहीं हो सकेगी और स्वास्थ्य गिरना शुरू हो जायेगा। संसार में हृदय रोग से मरने वाले लाखों व्यक्तियों की इस बीमारी का कारण उनके दूषित विचार ही हैं।

कई बड़े अनुभवी डाक्टरों ने यह बताया है कि मानसिक चिन्ता और खेद से बड़े भयंकर रोग जन्म ले लेते हैं। एक डाक्टर की यह सम्मति है कि जब दिमाग पर अधिक जोर पड़ता रहता है, तो शरीर में अनेक चर्मरोगों के होने की संभावना हो जाती है। इस तरह अनेक रोगों का मन की भिन्न-भिन्न दूषित मनोवृत्तियों से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। आज डाक्टर लोग विशेषतः इसी विषय की खोज कर रहे हैं। प्रोफेसर एल्मर गेट्सन ने एक प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया है कि जो व्यक्ति अधिक क्रोध या ईर्ष्या करते हैं उनके शरीर में बहुत अधिक विषाक्त द्रव्य पैदा हो जाते हैं, जिससे उनके रक्त में विष घुलता रहता है। परन्तु जो व्यक्ति सदा प्रसन्न एवं उच्च विचारों से पूर्ण रहते हैं वे इन विषाक्त द्रव्यों से बचे रहते हैं और उनके शरीर में अनेक पोषक द्रव्यों का निर्माण होता रहता है जिससे उनका स्वास्थ्य अधिक अच्छा होता रहता है।

क्रोध के विष के परिणाम तो अत्यन्त भयंकर होते हैं। जिस समय किसी मनुष्य को बहुत क्रोध आया हो, उस समय उसका थोड़ा-सा रक्त किसी छोटे जन्तु के शरीर में डाल दिया जाय, तो वह जन्तु थोड़ी देर में

मर सकता है। ऐसे तो कई उदाहरण देखे गये हैं कि क्रुद्ध माताओं का दूध पीने से अनेक बालक मृत्यु को प्राप्त हुए।

अतएव स्वास्थ्य की कुंजी हमारा अपना स्वस्थ मन ही है। मन से यदि हम अपने स्वस्थ और आदर्श जीवन की कल्पना करते रहेंगे, तो हमारा जीवन वैसा ही बन जायेगा। जैसे हम अपने आप को अनेक पापों व अपराधों से बचाते हैं, उसी तरह हमें दूषित विचारों से भी अपने मन को बचाना चाहिए। जिस बीमारी से हम दूर रहना चाहते हैं उसका विचार ही मन से दूर करना चाहिए। बहुत से लोगों की यह आदत होती है कि वे नीरोग होने पर भी अपने आप को रोगी समझा करते हैं या व्यर्थ ही अनेक रोगों की कल्पना किया करते हैं। इसका प्रभाव उनके शरीर पर घातक होता है और सचमुच वह रोग उन्हें हो जाता है।

आपने सड़क के किनारे मजमा लगाकर दवाइयां बेचने वालों को देखा होगा। इनके इर्द-गिर्द लोगों की कितनी भीड़ जमा होती है। वे बीमारी के लक्षणों का ऐसा वर्णन करते हैं कि सुनने वाला प्रत्येक आदमी अपने को उस बीमारी का मरीज समझने लगता है। इसके बाद वे उस बीमारी की दवाई निकालते हैं। उनके कहने के अनुसार यह दवाई उस बीमारी के लिए जादू का-सा असर रखती है। अपने को रोगी समझने वाले मूर्ख लोग झट से दवाई खरीद लेते हैं। ऐसे मूर्खों के बलबूते पर ही इन दवाई बेचने वाले ठगों का धन्धा चलता है। ऐसे बीमारों की बीमारी कभी ठीक नहीं होती। हो ही नहीं सकती। वास्तव में उन्हें कोई बीमारी तो होती नहीं है। पर वे अपने को बीमार समझते-समझते कुछ समय बाद सचमुच बीमार पड़ जाते है। इसी को कहते हैं—आ बैल मुझे मार।

इसी तरह कई लोग चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ कर उनमें बताए रोग के लक्षणों को अपने ऊपर घटाने लगते हैं। इसका भी वही परिणाम होता है। वे अपनी छोटी-छोटी बीमारियों को भी भयंकर रोग समझने लगते हैं। इस तरह वे रोग को जबरदस्ती बुला लेते हैं।

अगर इस तरह के लोगों के खानदान में किसी बड़े-बूढ़े की मृत्यु घातक रोग से हुई हो तो ये सोचेंगे कि इस रोग के कीटाणु हमारे शरीर

में भी अवश्य होंगे। देर-सवेर यह रोग हमें भी जरूर होकर रहेगा। बस, मन में इस प्रकार का भाव पैदा होते ही शरीर रोगी होने लगता है। रोग का या मौत का डर उन्हें घेरे रहता है। रोग के बारे में ही सोचते रहने से वे रोगी हो जाते हैं और मौत का डर उन्हें मौत के हवाले कर देता है।

यदि ऐसे लोग अपने सोचने का ढंग बदल दें तो बिना किसी वैद्य या डाक्टर का इलाज कराए ही वे स्वस्थ हो सकते हैं। अपने आपको 'स्वस्थ' समझना स्वास्थ्य प्राप्त करने की सबसे बड़ी कुंजी है।

आप ऐसे कई लोगों को जानते होंगे, जो मित्रों से मिलते ही सबसे पहले अपनी तबीयत खराब होने का रोना रोते हैं। वे कहते हैं आज तो बुखार-सा मालूम देता है। रात नींद भी ठीक से नहीं आई। खाना पचा नहीं। शरीर भारी-भारी मालूम पड़ रहा है।

इन लोगों से कभी भी मिलिये, रोनी-सी सूरत बनाए वे इसी तरह की बातें करते दिखाई देंगे। वे मौसम खराब होने की शिकायत करेंगे। दूध-घी अच्छा नहीं मिलता, इस बात की शिकायत करेंगे। वैद्यों-डाक्टरों को कोसेंगे। ऐसे लोग कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकते क्योंकि उनका मन रोगी होता है। जब तक वे अपने मन में अपने स्वस्थ होने की बात नहीं सोचते, वे कभी स्वस्थ नहीं हो सकते।

स्वास्थ्य चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह सदा अपने स्वस्थ होने की बात लोगों से करे। वह ऐसे लोगों से मिलना-जुलना तक बन्द कर दे जो मिलते ही पहली बात यह कहते हैं: आप तो बहुत कमजोर दिखाई दे रहे हैं। क्या बीमार थे? सच तो यह है कि ऐसे लोग एक प्रकार के शत्रु होते हैं। जो व्यक्ति सदा आपके उत्साह को घटाने की बात करे, क्या वह आपका मित्र हो सकता है?

एक डाक्टर रोगी को देखने गया। रोगी की हालत खराब थी। इसलिए उसे देखते ही डाक्टर निराश हो गया। डाक्टर ने दवाई दे दी। जब वह अपनी फीस लेकर चलने लगा तो उसने रोगी की देख-भाल करने वालों से कहा कि रोगी किसी तरह भी बच नहीं सकता। यह बात रोगी को मालूम हो गई। पर वह रोगी समझदार था। वह डाक्टर

की दवाई की अपेक्षा अपनी मानसिक शक्ति पर ज्यादा विश्वास करता था। उसने देख-रेख करने वालों से कहा—डाक्टर ने आपसे जो कुछ कहा है वह बिल्कुल गलत है। मैं अभी नहीं मरूंगा और जल्दी ही ठीक हो जाऊंगा।

हुआ भी ऐसा ही। उसने बाद में डाक्टर की दवाई नहीं की। थोड़े ही दिनों में वह नीरोग हो गया। यह है मानसिक शक्ति का चमत्कार। यदि हम अपने जीवन को प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलाएं—पापों, दोषों आदि से बचे रहें, अपने मन को सदा शुद्ध-पवित्र रखें और अपनी मानसिक शक्ति से भली भांति परिचित हों तो संभवतः कोई रोग हमारे पास भी न आए।

कभी-न-कभी ऐसा समय अवश्य आएगा जब रोगी होना बुरा समझा जाएगा। रोगी होने का मतलब होगा कि इस आदमी ने कोई न कोई मानसिक पाप किया है। रोग से छुटकारा पाने के लिए लोग दवाइयां खाने के बजाए मन को निर्मल बनाने का यत्न किया करेंगे। विद्वान् हम्बल्ट ने कहा है—"एक वह समय आएगा, जब कि बीमार होना बड़े अपमान की बात समझा जाएगा और जब कि लोग किसी रोगी को देखकर कहेंगे कि यह उसके किसी मानसिक पाप का परिणाम है।"

वास्तव में हमारे मन में, हमें नीरोग रखने की शक्ति है। यदि हमारे मन में किसी प्रकार का रोग या विकार है तो हम कभी स्वस्थ नहीं रह सकते। जिसका मन दुर्बल है, उसका शरीर भी दुर्बल होगा। मन और शरीर का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

हम बचपन से ही पढ़ने-लिखने और तरह-तरह के काम सीखने में बहुत परिश्रम और खर्च करते हैं। यह परिश्रम और खर्च जीवन को सुखी बनाने के लिए किया जाता है। हम सब यह भी जानते हैं कि अगर हमारे सब काम ठीक और व्यवस्थित ढंग से होंगे तो हम सुखी और सफल होंगे। हम महत्त्वपूर्ण कामों को खूब सोच-विचार कर करते हैं। परन्तु हमारे जिस स्वास्थ्य पर हमारी सफलता और उन्नति निर्भर करती है, उसे ठीक रखने के लिए हम कोई भी विशेष प्रयत्न नहीं करते। यह कितनी विचित्र बात है!

हमारी सब प्रकार की शक्तियां केवल हमारे स्वास्थ्य पर ही निर्भर करती हैं। संस्कृत के एक विद्वान् ने कहा है—"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्" इसका अर्थ है कि धर्म अथवा कर्त्तव्य पालन के लिए शरीर ही प्रमुख साधन है। एक दूसरे विद्वान् ने लिखा है—"स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति" चित्त के स्वस्थ रहने पर ही बुद्धि ठीक-ठीक काम करती है।

सभी जानते हैं कि रोगी को कुछ भी अच्छा नहीं लगता। न उसका मन कुछ खाने-पीने को होता है न पहनने को। उसे अपने प्रिय सम्बन्धी तक अच्छे नहीं लगते। रोग में स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। इसके विपरीत स्वस्थ व्यक्ति दूने-चौगुने उत्साह से खाता और कमाता है। केवल स्वस्थ रहकर ही हम अपने सब कामों को भली प्रकार कर सकते हैं। जिस प्रकार बड़ा भवन बनाने के लिए सुदृढ़ नींव बनाने की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार चरित्र और जीवन का निर्माण करने के लिए भी नींव की आवश्यकता होती है और वह नींव है अच्छा स्वास्थ्य। हमें समझ लेना चाहिए कि स्वास्थ्य का हमारे आचार-विचार से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समय पर उचित भोजन, उचित नींद और व्यवस्था पूर्ण रहन-सहन से ही हम स्वस्थ रह सकते हैं।

स्वास्थ्य के साथ विश्वास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि हम रोगी होने पर किसी ऐसे डाक्टर से इलाज कराएं, जिस की योग्यता में हमें विश्वास न हो तो हमें कुछ भी लाभ नहीं होगा। और यह विश्वास ऐसी चीज है, जिसके सहारे हम बिना किसी वैद्य-डाक्टर के भी अपना इलाज कर सकते हैं।

मन ही मनुष्य है। वही वास्तव में जीवन है। सदा स्वस्थ और सुखी रहने का सबसे अच्छा और एक मात्र उपाय यही है कि हम अपने आप को ईश्वर का अंश समझकर सदा सुख और स्वास्थ्य की कामना किया करें। हमें मन में इस बात का दृढ़ विश्वास कर लेना चाहिये कि सारे विश्व में एक मात्र ईश्वरीय तत्त्व ही सर्वशक्तिमान् है और हममें भी वह तत्त्व मौजूद है। फिर हम रोग और शोक से संतप्त क्यों रहें।

७

मानस चिकित्सा

सत्व, रज और तम ये तीनों मन के गुण हैं। इन तीनों गुणों का साम्य मानसिक स्वस्थता का लक्षण है।

—महाभारत, शान्तिपर्व

बुद्धि, इन्द्रिय तथा मन जिसके प्रसन्न और निर्मल होते हैं, वह मनुष्य स्वस्थ कहलाता है।

—भावमिश्र

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु —वेद

शरीर पर मानसिक क्रियाओं के प्रभाव का अध्ययन करने वाले प्रो० एल्मर सी० गेट्स ने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिखाया है कि मानव मन में जितने प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं, उनके कारण शरीर में स्थित रासायनिक द्रव्यों में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। वासना, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा आदि दुष्ट विचारों के कारण, रक्त को दूषित करने वाले, शरीर के लिए हानिकारक रासायानिक तत्व उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत करुणा, मैत्री, परोपकार, त्याग आदि सद्विचारों से शरीर को पुष्ट करने वाले रासायनिक तत्व बनते हैं। मन में उत्पन्न होने वाला प्रत्येक कुविचार मस्तिष्क के कोषाणुओं में परिवर्तन करता है और बार-बार कुविचारों और विकारों के उत्पन्न होने से यह परिवर्तन स्थायी रूप ले लेता है।

इन्हीं प्रोफेसर महोदय का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन

एक घंटा अपने मन में शुभ और सुन्दर विचारों को धारण करे तो वह अपने शरीर और मन में एक सुखद परिवर्तन कर सकता है। जिस प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने के लिए लोग नियमित रूप से व्यायाम, सैर आदि करते हैं, उसी प्रकार मन और शरीर दोनों के स्वास्थ्य के लिए साहित्य का स्वाध्याय, सद्विचारों का चिंतन-मनन करना चाहिये। यह मानसिक व्यायाम मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक है।

स्वास्थ्य को नष्ट करने में जहां नशीली चीजों का सेवन, स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना करना आदि कारण होते हैं, वहां हमारे मन में स्थित दुर्भावनाएँ भी अपनी छाया उस पर डालती हैं। क्रोध से हमारे थूक में विष की उत्पत्ति होती है। कितने ही मनोवेगों में हृदय की गति एकदम बढ़ जाती है। पसीना छूटने लगता है। यद्यपि तेज दौड़ने से भी उपर्युक्त बातें होती हैं पर दोनों में बड़ा अन्तर है। रासायनिक विश्लेषण ने सिद्ध कर दिया है कि अपराध या क्रोध के कारण आने वाले पसीने और परिश्रम के कारण आने वाले पसीने में अन्तर होता है। प्रो० गेट्स का कहना है कि पसीने की जांच से शरीर में विभिन्न मनोभावों की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है।

यह तो सभी जानते हैं कि अनेक अवसरों पर बहुत-से लोगों के प्राण भय के मारे ही निकल जाते हैं। और यह भी सर्व विदित है कि अनेक अवसरों पर दुर्बल लोग भी साहस पैदा हो जाने पर बलवान् बन जाते हैं और साधारणतया जो कार्य उनकी सामार्थ्य के बाहर होता है, उसे भी कर दिखाते हैं। इससे स्पष्ट है कि अच्छे या बुरे मनोवेगों का शरीर पर तदनुरूप ही प्रभाव पड़ता है। गहरे दुःख का धक्का लगने पर एक दिन में बाल सफेद होते देखे गए हैं। एक दिन में लोग इतने क्षीण हो जाते हैं कि पहचानना कठिन होता है। इससे मनोविकारों की शक्ति और प्रभाव सिद्ध होता है।

महान् व्यक्तित्व वही है जो अपने मनोविकारों का स्वामी होता है। वह अपनी इन्द्रियों का दास नहीं होता। ऐसा व्यक्ति क्रोध आने पर इस के विपरीत भाव – प्रसन्नता को पैदा करके क्रोध पर विजय पाता है। वह प्रलोभन का अवसर उपस्थित होने पर मुंह फेर लेता है। वह ईर्ष्या के स्थान

पर प्रेम और उदारता के भावों को प्रश्रय देता है। अभिप्राय यह है कि जब कभी कोई दुष्ट भाव उसके मन को आक्रांत करना चाहता है तो वह जागरूक रह कर उसे अपने भीतर नहीं घुसने देता और सद्भावों को जगा देता है। वैसे ही जैसे जागरूक चौकीदार अनचाहे लोगों के घर में घुसने के प्रयत्न को विफल कर देता है और घर के सोए हुए लोगों को जगाकर सचेत कर देता है। चिकित्सक लोग भी शरीर में विजातीय या विषैले द्रव्य की उपस्थिति देखकर उसे नष्ट करने या बाहर निकालने का उपचार करते हैं। मन में किसी दुष्ट विचार या भाव के उत्पन्न होने पर उन्नति पथ के यात्री को ऐसी ही प्रतिक्रिया करनी चाहिये। प्रसन्नता से दुःख और चिन्ता का नाश होता है। प्रेम और सहानुभूति से घृणा तथा ईर्ष्या का विष नष्ट हो जाता है। स्वास्थ्य की कामना और कल्पना से रोगों पर विजय पाने में सहायता मिलती है।

जिस प्रकार हम अन्य अनेक बातें सीखते हैं, उसी प्रकार हमें अपने अच्छे और बुरे मनोविकारों की प्रतिक्रिया के बारे में भी जानना चाहिये। यदि बहुत-से लोग इन बातों से परिचित हो जाएं तो आज संसार में जितने रोग, कष्ट और दुःख हैं, उनमें से अधिकांश से छुटकारा मिल जाए। जितना रुपया रोगों की चिकित्सा के लिए खोले जाने हस्पतालों पर खर्च किया जाता है यदि उसका दशमांश भी लोगों को रोगों से बचने के उपाए बताने पर खर्च किया जाए तो अधिक लाभ हो सकता है। अगर अच्छी शिक्षा द्वारा आत्म-संयम अर्थात् मनोविकारों पर काबू पाना सिखाया जाए तो जेलों में कैदियों की संख्या और न्यायालयों में अभियोगों की संख्या बहुत कम की जा सकती है। आत्महत्यारों, पागलों और अवसाद युक्त चेहरों में तो एकदम कथनीय कमी की जा सकती है।

अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि रोगी मन शरीर को भी रोगी बना देता है। कुछ दशाब्दियां पूर्व तो मनो-रोगों के बारे में विद्वानों की जानकारी भी नगण्य थी। अब जबकि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हमने पर्याप्त उन्नति कर ली है, हमें दुष्ट मनोविकारों के शरीर पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों की ठीक-ठीक जानकारी होनी ही चाहिये। उन्हें उत्पन्न होने से कैसे रोका जाए, उत्पन्न होने पर क्या किया जाए और तन-मन को कैसे

स्वस्थ रखा जाए, यह सब हमें शीघ्रातिशीघ्र सीख लेना चाहिये। इससे हम अधिक अच्छे मानव-समाज का निर्माण करके अपने को और दूसरों को अधिक सुख-सुविधापूर्ण वातावरण प्रदान कर सकते हैं। यह कार्य हमारे लिए अनेक धर्म-प्रवर्तकों ने किया था। पर आज हम उन्हें भी भूल बैठे हैं। यदि धर्म की शिक्षाओं को हम जीवन में स्थान दें तो बहुत-सी समस्याएँ स्वतः हल हो सकती हैं। बुद्ध, ईसा, कबीर, नानक और अनेकानेक सन्त-महात्माओं ने दुष्प्रवृत्तियों पर विजय पाने के लिए कहा है पर हम सुनें, तब न। गीता जो भारतीय तत्त्व-ज्ञान का सार है, हमें बार-बार कहती है कि दैवी सम्पद् का विकास करो। आचार और व्यवहार में सात्विक बनो पर हम पढ़ें-गुनें तब न।

हम सब का यह सामान्य अनुभव है कि किसी व्यक्ति के चेहरे को देखकर हम तुरन्त बता सकते हैं कि वह उदास, चिन्तित या क्रोध में है। कितने ही ऐसे चेहरे होते हैं जिन्हें देखकर हम उनके अच्छे या बुरा होने का अनुमान लगा लेते हैं। अपराधियों के चेहरों पर सर्वदा क्रूरता के भाव देखे जा सकते हैं। सन्त-महात्माओं के चेहरों पर सदा शान्ति विराजमान रहती है। वे अपनी सौम्यता से दर्शनार्थियों के मन को भी शान्त कर देते हैं। इसीलिए चेहरे को मनुष्य-मन का दर्पण कहा जाता है।

हमें जब कोई भी रोग सताता है तो तुरंत वैद्य या डाक्टर के पास जाते हैं। परन्तु अपने मानसिक स्वास्थ्य के बारे में हम कभी कुछ नहीं करते, कुछ नहीं सोचते। जबकि इसके लिए किसी के पास जाने और फीस देने की भी आवश्यकता नहीं है। इसकी चिकित्सा तो हमारे अपने हाथ में है। यदि इस पर भी हम कुछ न करें तो इसे मूर्खता के सिवा और क्या कहा जा सकता है!

जिस प्रकार जल की सब प्रकार की अपवित्रता और गन्दगी को वैज्ञानिक क्रिया से दूर करके उसे पेय बनाया जा सकता है, उसी प्रकार दूषित मनोविकारों से उत्पन्न होने वाले विषों को भी दूर किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम उन उपायों को जानें जिनके द्वारा ऐसा किया जा सकता है। गर्म पानी को ठंडा करने के लिए हम

उसमें ठंडा पानी मिलाते हैं और इच्छित परिणाम हमारे सामने होता है। इसी प्रकार मन में विषाद उत्पन्न होने पर हम प्रसन्नता के भाव को उत्पन्न करके विषाद से बच सकते हैं। मानसिक क्रियाओं से उत्पन्न होने वाले विषों के प्रभाव को नष्ट करने के लिए हमें अपने मन में तुरन्त विरोधी भाव को जाग्रत करना चाहिये। इस सिद्धान्त को यदि भली प्रकार हृदयंगम कर लिया जाए तो दुःख, चिन्ता, अवसाद और रोग से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है।

सद्भावों में सबसे पहले प्रेम भाव को लीजिये। अकेले प्रेम भाव में ही ऐसी संजीवनी शक्ति विद्यमान है, जिसके द्वारा अनेक दुष्ट मनोविकारों—स्वार्थपरता, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा के विष का विनाश किया जा सकता है। यदि हम अपने अन्तस् में प्रेम, उदारता, सहानुभूति, प्रसन्नता, साहस, निर्भयता आदि कल्याणकारी भावों को प्रतिष्ठित करें तो बुरे भाव हमारे पास फटकेंगे ही नहीं। जहां पहले से ही प्रकाश देने वाला अखण्ड दीप जल रहा होगा, वहां अन्धकार कैसे प्रवेश पाएगा? जब दुष्ट भाव हमारे भीतर प्रवेश ही नहीं कर पाएंगे तो फिर उनका विष भी पैदा नहीं होगा। फिर उसे दूर करने की भी जरूरत नहीं रहेगी। यही श्रेयस्कर मार्ग है। पांव को कीचड़ में डालकर फिर धोने से तो यही अच्छा है कि पांव कीचड़ में डाला ही न जाए। अपने हृदय को सद्गुणों—सद्भावों, सद्विचारों का आश्रय स्थल बनाइये।

लोग यह तो चाहते हैं कि बुरे विचारों से दूर रहें पर सुविचारों को अपनाने का प्रयत्न नहीं करते। वे अन्धकार को तो दूर करना चाहते हैं पर प्रकाश के लिए दीप नहीं जलाते। इस लिए उनके प्रयत्न विफल होते हैं। यही बड़ी समस्या है। जिस व्यक्ति से हम घृणा करते हैं, जब तक उस के प्रति हमारे हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं हो जाता, घृणा जा नहीं सकती। भय तब तक दूर नहीं होगा, जब तक साहस का संचार नहीं होता। इन बातों का बार-बार कहने का अभिप्राय यह है कि हम भली प्रकार समझ लें कि दुष्ट मनोविकारों को दूर भगाने का प्रयत्न तब तक सफल नहीं होगा, जब तक उनका स्थान लेने वाले भावों-विचारों का वहां निवास नहीं होगा। खाली मन शैतान का घर। वास्तव में मन

कभी खाली रहता ही नहीं। अब यह आपके अपने हाथ की बात है कि आप उसे सद्विचारों का निवास बनाएँ। तब 'भरी सराय देखकर पथिक आप फिर जाए' के अनुसार कुविचार लौट जाएँगे।

मन की उपमा खेत से दी जा सकती है। खेत में अच्छा-बुरा जो कुछ आप बोएँगे वही काटना पड़ेगा। अगर आप उसमें कुछ भी नहीं बीजते तो भी खर-पतवार तो अपने आप ही पैदा हो जाएँगे। ये बिना बोए भी पैदा हो जाते हैं। ये बिना निराई-सिंचाई के भी बढ़ जाते हैं। फिर इनका विनाश या बीजनाश करने में बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। इन्हें जड़ समेत न उखाड़ा जाए तो फिर पैदा हो जाते हैं। इसलिए मन रूपी खेत में सद्विचारों के बीज डालिये। इससे पहले खेत को भली प्रकार तैयार कर लीजिये। निराई-गोड़ाई तो करनी ही पड़ेगी। जैसे मक्का के एक बीज से जो पौधा पैदा होगा उसमें दो भुट्टे निकलकर एक मक्का का बीज हजार गुना बढ़ जाएगा, यही बात विचार रूपी बीज की भी है। यदि हम सम्प्रति और बातों को छोड़कर केवल सदा हंसमुख और प्रसन्न रहना ही सीख लें तो भी अनेक बुराइयों से बच सकते हैं। इस तरह दृढ़ता पूर्वक यदि सत्य को ही अपना लें तो भी अनेक दोषों से बचा जा सकता है। सत्यवादिता हमें न तो झूठ बोलने देगी, न किसी की चोरी करने देगी, न झूठी निन्दा-स्तुति। एक सत्य के ही सहारे हम में अनेक सद्गुणों का प्रादुर्भाव हो जाएगा। अभिप्राय यह है कि पहले किसी एक सद्गुण को ग्रहण कीजिए और दृढ़ता पूर्वक तदनुरूप आचरण कीजिए। इस प्रकार एक-एक सद्गुण को बढ़ाते जाइये। एक दिन आप सद्गुणों की खान बन जाएँगे और दुर्गुण आपके पास भी नहीं आएँगे। इससे दोहरा लाभ होगा। एक तो आपको व्यक्तिगत लाभ होगा, दूसरे समाज भी इससे लाभान्वित होगा। आपका अनुकरण आपके आस-पास के और दस आदमी करेंगे और इस प्रकार यह संख्या निरंतर बढ़ती जाएगी। इसलिए हमें सद्गुणों के बीजों को बोकर अपना तथा समाज का कल्याण करना चाहिये।

यह समझना भूल है कि विचारों का सम्बन्ध केवल मस्तिष्क से है। और यह कि विचारों की जितनी क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं होती हैं, उनका

सम्बन्ध केवल मस्तिष्क से है। वास्तविकता इसके विपरीत यह है कि विचारों का सम्बन्ध हमारे सारे शरीर के साथ है, शरीर के प्रत्येक कोश के साथ है। शरीर-शास्त्रियों ने परीक्षा करके यह जाना है कि अनेक अन्धों की उंगलियों में भी मस्तिष्क जैसे तत्त्व होते हैं। अनेक अन्धे व्यक्ति हाथ से छू कर रंग तक का नाम बता सकते हैं, मित्रों को पहचान लेते हैं। ऐसे अन्य अनेक काम कर देते हैं जो केवल मस्तिष्क का काम है। जो विचार हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होता है, वह तुरंत ही सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। कोई भयानक दृश्य देखते ही सारा शरीर थर-थर काँपने लगता है। आनन्द का कोई प्रसंग उपस्थित होने पर सारे शरीर में रोमांच हो उठता है। यहां तक देखा गया है कि विशेष दुखद समाचार सुनने पर मस्तिष्क और हृदय की क्रियाओं के अतिरिक्त पाचन-क्रिया तक में गड़बड़ी हो जाती है। इन सब बातों से यही प्रमाणित होता है कि प्रत्येक भाव या विचार का प्रभाव मस्तिष्क तक ही सीमित न रहकर सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। यह अनुभव सिद्ध है कि जो लोग सदा प्रसन्न, शान्त और निर्भय रहते हैं उनके शरीर के कोषाणु पुष्ट और नीरोग होते हैं। परन्तु जो लोग दुःखी चिन्तित और भयभीत रहते हैं, उनके शरीर के कोषाणु निर्बल होते हैं और रोगाक्रान्त हो जाते हैं। ज्ञान-विज्ञान के इस युग में हमें इतना तो समझ ही लेना चाहिये कि सब प्रकार के रोगों और कष्टों का मूल हमारे विचारों में ही है। बाहरी कारण भी उनकी ही उपज हैं। अब समय आ गया है कि हम दुष्ट विचारों से उतने ही दूर रहें जितने विषैले हिंस्र जन्तुओं से रहते हैं।

कोई भी भला आदमी कभी भी यह सहन नहीं करेगा कि उसके पास-पड़ोस में चोरों-बदमाशों का कोई अड्डा हो। फिर दुर्गुण रूपी इन बदमाशों का अड्डा तो हमारे भीतर ही रहता है। उसे तुरंत ही क्यों न नष्ट कर दिया जाए। शराब पीने की आदत कभी न पड़े, इसका सबसे बढ़िया उपाय यह है कि आदमी पहली बार ही शराब न पिये। अभिप्राय यह कि यदि किसी बुरे विचार को पहली बार ही अपने पास न आने दें

तो फिर उससे सदा के लिए सुरक्षित रह सकते हैं। जो लोग मन को वश में रखते हैं और बुरे विचारों को स्थान नहीं देते वे जीवन में बड़े-बड़े कार्यों को करने में सफल होते हैं और दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाते हैं।

आदतें—भली या बुरी—कैसे पड़ती हैं, यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये। जब हम किसी क्रिया को बार-बार दुहराते हैं तो वह आदत का रूप धारण कर लेती है। फिर वह हमारे स्वभाव का अंग बन जाती है। जिस चीज की आदत पड़ जाती है, उसके लिए फिर विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वह सहज रूप में होने लगती है। इसलिए हमें जागरूक रहकर अपनी आदतों का चुनाव करना चाहिये। एक बार जो आदत पड़ जाती है, उसे छोड़ सकना सरल नहीं होता। फिर भी लगातार प्रयत्न करने से हम पुरानी बुरी आदतों को छोड़ सकते हैं और नई आदतें डाल सकते हैं।

हमारे विचार-सागर में सदा जोरदार लहरें उठा करती हैं। अच्छी भी और बुरी भी। वे हमें अपने बल के साथ बहा ले जाने का प्रयत्न करती हैं। हमें सावधान रहकर बुरी विचार-लहरों में नहीं बहना चाहिये। अगर लहरें हमें मनमाने तौर पर बहा ले जाएं तो समझना चाहिये कि विनाश निश्चित है। वे हमें किसी भँवर में फंसा देंगी, किसी चट्टान से टकराकर चूर-चूर कर देंगी, इस की कल्पना सहज ही की जा सकती है। विषय-वासनाएं हमें उसी प्रकार बहा ले जाती हैं जैसे वायु पानी में तैरती नाव को। इसलिए उन्नति-मार्ग के यात्रियों को सावधानी-पूर्वक चप्पू चलाना चाहिये और जीवन-नौका को अपने गन्तव्य की ओर ले जाना चाहिये। गीता में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि मन बड़ा चंचल है। इसे वश में रखना सरल काम नहीं है। पर अभ्यास—सतत् प्रयत्न द्वारा यह वश में हो जाता है, हो सकता है।

अन्त में एक बार फिर यह समझ लीजिए कि हमारे भीतर अच्छा या बुरा जो कुछ है वह हमारा ही उत्पन्न किया हुआ है। विवेक-बुद्धि द्वारा अच्छे को बढ़ाने और बुरे को भगाने की शक्ति भी हममें विद्यमान

हैं। संसार के सारे क्रिया-कलापों का मूल विचार ही हैं। विचार ही कार्यों का रूप धारण करते हैं। इसलिए सत्संग, स्वाध्याय द्वारा सद्विचारों को बढ़ाइये। प्रयत्न और अभ्यास द्वारा उन्हें सींचिये। फिर देखिए आपके जीवन में कैसे सुगन्धित मनोरम फूल खिलते हैं और कितने मीठे फल लगते हैं। अपने जीवन को सदाबहार बनाइये।

८

कल्पना शक्ति और स्वास्थ्य

जो जैसा सोचता है, वह वैसा ही हो जाता है।

—एक सुभाषित

एक बार एक पादरी को अस्पताल में दाखिल किया गया। वह अनेक रोगों से पीड़ित था कि उसमें हिलने-जुलने की भी सामर्थ्य नहीं थी। पता नहीं कैसे उसके मन में यह बात घर कर गई थी कि उसने अपने नकली दांत निगल लिए हैं जो कि पेट में जाकर अब उसकी आंतों को काट रहे हैं। चिकित्सकों ने तरह-तरह से समझाकर उसका वहम हटाना चाहा, लेकिन उस पर कुछ भी असर न पड़ा। उसकी उक्त धारणा बना रही, और उपचार चलता रहा। कुछ ही दिन बीते कि उसे पत्नी का तार मिला जिसमें लिखा था कि आपके जो नकली दांत खो गये थे वे आपके बिछौने के नीचे पड़े मिल गए हैं। तार पढ़ते ही पादरी का मानसिक रोग काफूर हो गया। वह अपनी नादानी पर पछताया। वह उठा! कपड़े पहने, अस्पताल का बिल चुकाया और पैदल चलकर अपने-आप घर आ पहुंचा।

उक्त उदाहरण से हम किस परिणाम पर पहुंचते हैं? जब तक पादरी यह समझता था कि उसके पेट में नकली दांत चले गए हैं जो अन्दर जाकर उसके पेट में चुभ रहे हैं, तब तक दुनिया की कोई दवाई उसको लाभ नहीं पहुंचा सकती थी, और यही कारण था कि वह अनेक पीड़ाओं एवं कष्टों से ग्रसित था। जब उसे यह विश्वास हो गया कि

नकली दांत उसके पेट में नहीं हैं तब वह बिना किसी दवा-दारू से भला-चंगा हो गया।

अनुभवी डाक्टरों का कथन है कि संक्रामक रोग मनुष्य की देह में जहर फैल जाने से तो होते ही हैं, लेकिन साथ ही वे हमारी मनःस्थिति से भी पूरी तरह सम्बन्धित हैं। अगर हम सदैव उस रोग से भयभीत बने रहेंगे, तो हम पर आसानी से वह संक्रामक रोग हावी हो जाएगा और जब एक बार किसी तरह उसका जहर हमारे शरीर में घुस जाएगा तो उसके दुष्प्रभाव से अपने-आपको बचाने की शक्ति हममें रह न पाएगी, क्योंकि अपनी मानसिक कमजोरी की बदौलत हम पहले ही उसके लिए प्रस्तुत होंगे। लेकिन इसके उल्टे यदि हम इस रोग से डरेंगे नहीं, और यह आत्म-विश्वास बनाए रखेंगे कि रोग हमें हो ही नहीं सकता तो आप देखेंगे कि शरीर में घुस आने के पश्चात भी रोग आपका कोई नुकसान नहीं करेगा। और यह देखने में आता है कि भयानक एवं संक्रामक रोगों का उपचार करने वाले डॉक्टर, जो सदैव इन्हीं रोगों के शिकार व्यक्तियों से घिरे रहते हैं, बहुधा इन रोगों से ग्रस्त नहीं होते। कारण यह है कि उन्हें पक्का विश्वास होता है कि वे इन रोगों से पीड़ित नहीं हो सकते, और यही आन्तरिक शक्ति उन्हें रोगों से बचाने में सहायक होती है।

एक नामी-गिरामी पहलवान था। एक बार उसने एक भयानक दृश्य देखा। वह मन ही मन उसकी भयानकता का चिन्तन किया करता। इस प्रकार सोचते-सोचते वह बहुत दुर्बल हो गया कि अब उससे थोड़ा बोझ भी उठाए न उठता था। कुछ केस ऐसे देखने में आए हैं जिन्हें ऑपरेशन करने से पूर्व बेहोश करने के लिए क्लोरोफार्म की शीशी सुंघाई जाने वाली थी। वे शीशी को देखते ही स्वयमेव बेहोश हो गए। उन्हें शीशी सुंघाने की भी जरूरत नहीं रह गई। बात यों हुई कि वे लोग क्लोरोफार्म की शीशी सुंघाए बिना ही, मानसिक क्रिया से अपने आप ही मूर्छित हो गये।

एक बार एक डाक्टर भ्रमणार्थ निकले हुए थे कि एक जगह उन्हें सूचना मिली कि एक ऐसा रोगी है जो किसी कारण से छटपटा रहा है। डॉक्टर साहब के पास दवाइयां व आवश्यक सामान तो था नहीं

पर वे रोगी को देखने के लिए उसके घर जा पहुंचे। बीमार को उन्होंने बहुत सावधानी व गंभीरता के साथ देखा। तदुपरान्त नमक लेकर उन्होंने चारेक पुड़ियां बनाईं और कहा कि आध-आध घण्टे में एक-एक पुड़िया दें; दो घण्टों में रोगी बिल्कुल ठीक हो जाएगा; क्योंकि मैंने बहुत अच्छी दवा दी है। वह अन्दर जाते ही रोग को जड़-मूल से उखाड़ फेंकेगी। रोगी पर डॉक्टर के इस कथन का गहरा प्रभाव पड़ा। नमक की दो-एक पुड़ियां लेते ही वह चारपाई से उठ बैठा। और भला-चंगा हो गया।

सिर दर्द, पेट दर्द और बिच्छू के काटने के दर्द से पीड़ित लोग मंत्र-यंत्र तथा झाड़-फूंक से ठीक होते देखे गए हैं। उनके आरोग्य-लाभ का कारण भी मनोवैज्ञानिक है।

फिलाडेल्फिया में एक बार भयंकर रोग फैला तो बाद में जो उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई उससे अवगत हुआ कि वहां एक ख्यात डॉक्टर थे जिनका नाम मिस्टर रश था। जहां मिस्टर रश जाते थे, रोगी आश्वस्त हो उठते थे। कई रोगियों को तो दवा देने की आवश्यकता ही न पड़ती थी। वे उन्हें देखते ही अथवा उनसे बातें करते ही ठीक हो जाते थे।

एक और भी मनोरंजक घटना हुई। एक डॉक्टर अपनी प्रेयसी के साथ थियेटर देखने गए। वहां उसे बेहोशी आने लगी। वह औरत बहुत घबराने लगी और कहने लगी कि मैं मरी, मैं गिरी! डाक्टर ने सीट पर पत्नी को हाथ देकर सम्भाला, और तुरन्त कोट की जेब में से कुछ निकाला और कहा कि इसे मुंह में रख ले पर ध्यान रखे कि निगले नहीं। स्त्री कुछ देर तक उसे मुंह में रखे चूसती रही। उसे शीघ्र ही लगने लगा कि उसकी मूर्च्छा कम होती जा रही है और वह स्वस्थ हो रही है। उसे कौतूहल हुआ कि ऐसी कौन-सी गोली है जिससे इतना जल्दी आराम हुआ है। उसने उसे मुंह से बाहर निकाल कर देखा तो चकित रह गई। वह कोट का बटन था!

इसी तरह के बहुत से उदाहरण और देखे जा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि मन का विश्वास बहुत बड़ी चीज़ है। व्यक्ति की देह में जो

रोग होता है; वह उतना भयंकर नहीं होता, जितना यह मन हमारे व मस्तिष्क में भयंकर होता है।

वस्तुतः हमारी कल्पना-शक्ति हमारे शरीर पर अत्यधिक प्रभाव डालती है। पर इस शक्ति का पूरा-पूरा अन्दाजा बहुत थोड़े लोग ही लगा पाते हैं। जो लोग दुर्बल हृदय वाले होते हैं उनपर हर तरह के विश्वास का बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ता है। अगर कुछ व्यक्ति मिलकर किसी व्यक्ति को पागल कहना शुरू कर दें तो आप जानते हैं क्या होगा ? वह आदमी शीघ्र ही पागल हो जाएगा। आप जानना चाहते हैं कि कैसे ? कारण यह है कि सभी मिलकर उसके दिल व दिमाग में यह बात भर देते हैं कि वह पागल है। और वह उस पर सोचते-सोचते पागल हो जाता है। एक अंग्रेज अफसर का किस्सा सुनिए। एक बार वह कुछ दुःखी और निराश था और उसकी तबियत भी कुछ खराब थी। वह एक प्रसिद्ध डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने उसकी अच्छी तरह जांच पड़-ताल की और कहा कि पत्र द्वारा वह रोग-निदान व उपचार अथवा निर्देश आदि लिख भेजेगा। दूसरे दिन उस व्यक्ति को एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि—"तुम्हारा एक फेफड़ा खराब हो गया है और जिगर भी खराब हो गया है। यद्यपि तुम अभी कुछ दिन और जिओगे पर अब तुम्हारा बचना मुश्किल है।" पत्र पढ़कर अंग्रेज अफसर सन्न रह गया। उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। कुछ ही घण्टों में उसके उदर में असहनीय पीड़ा उठी कि फिर बढ़ती ही गई। उसने समझा कि अब मौत आई। और वह बिमार पड़ गया। रात को उसने उसी डॉक्टर को फिर बुला भेजा। डॉक्टर आया। उसने रोगी को देखा। रोगी की इतनी खराब दशा देखकर वह खुद चकित रह गया। वह हैरान था कि एक ही दिन में रोगी को क्या से क्या हो गया। डॉक्टर ने पूछा, "क्यों भाई, बात क्या है ?"

रोगी फुसफुसाया, "डॉक्टर साहब, मुझे लगता है, मेरे फेफड़ों में कोई नुक्स है।"

डॉक्टर ने कहा, "कल ही तो मैंने तुम्हारे फेफड़े देखे थे—वे ठीक हैं।"

"और मेरा जिगर ?" रोगी ने आतुर होकर पूछा।

"तुम्हारा जिगर भी बिल्कुल ठीक है।" डॉक्टर ने कहा।

"और जो कल आपने पत्र में लिखा था ?" यह कहकर रोगी ने कांपते हाथों से सिरहाने के नीचे से पत्र निकाल कर डॉक्टर को थमा दिया।

डॉक्टर की दृष्टि पत्र में लिखी पंक्तियों पर दौड़ गई। वह चौंका और गंभीर हो गया। थोड़ी देर बाद बोला—"ओहो, यह पत्र तो दूसरे रोगी के लिए था। शायद मेरे सहायक की भूल से ऐसी गड़बड़ हुई। उसने तुम्हारे लिफाफे में एक अन्य रोगी का पत्र रख दिया। तुम्हारे लिए तो मैंने यह लिखा था कि कुछ दिनों का अवकाश लेकर पहाड़ पर चले जाओ तो तुम्हारी तबियत बिल्कुल ठीक हो जाएगी।

यह सुनना था कि रोगी उठकर बैठ गया। उसके मन पर जो बुरा प्रभाव पड़ा था, वह जाता रहा। वह दो-तीन दिनों में भला-चंगा हो गया।

एक प्रसिद्ध डाक्टर जो एक मैडिकल कालेज में पढ़ाता था, अपने छात्रों को बार-बार सावधान किया करता था कि रोगों का निदान पढ़ते-पढ़ते तुम उन्हें कहीं अपने ऊपर मत घटाने लगना। कभी यह मत सोचना कि अमुक रोग के लक्षण तो मुझ पर पूरी तरह घटते हैं। ऐसा करोगे तो तुम निश्चित रूप से बीमार हो जाओगे, हालांकि तुम बिलकुल स्वस्थ हो। अपनी कल्पना-शीलता के कारण प्राय: लोग ऐसे भ्रम में पड़ जाते हैं। उस डाक्टर ने इस पुस्तक के लेखक को अपना एक अनुभव बताया था। उसने बताया था कि कई वर्ष पहले मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मुझे अमुक असाध्य रोग हो गया है। मैं जानता था कि इस रोग का कोई इलाज नहीं है। और अब मेरे बच सकने की कोई उमीद नहीं है। यद्यपि मेरे अनेक बड़े-बड़े डाक्टर मित्र और परिचित थे पर मैंने उनसे सलाह-मशवरा करना भी बेकार समझा। मैं मन ही मन घुलता रहा और बहुत दुर्बल हो गया। अब मेरा मन किसी भी काम में नहीं लगता था। मैं जल्दी ही थक जाता। इससे मेरी धारणा और भी पक्की हो गई और पास खड़ी मौत मुझे मुंह बाए दीखने लगी। एक दिन

अचानक मेरे एक मित्र डाक्टर मुझसे मिलने आए। वे मुझे देखते ही दंग रह गए। पहले तो उनके पूछने पर मैं टालमटोल करता रहा पर जब उनके प्रेम-पूर्ण आग्रह को न टाल सका तो सारी बात उन्हें बता दी। उन्होंने भली प्रकार मेरी परीक्षा की। तब उन्होंने पूछा कि किस डाक्टर ने तुम्हें यह बीमारी होने की बात बताई थी ? मैंने कहा कि किसी दूसरे डाक्टर ने तो नहीं बताया था। मैंने अपने आप ही यह निदान किया था। इस पर वे खूब जोर से हँसे और उस रोग के सम्बन्ध में मुझ से वाद-विवाद करने लगे। कोई घंटे भर बाद मुझे निश्चय हो गया कि वास्तव में इस रोग का मेरे साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। और अब तक मैंने एक भ्रम को पाल-पोसकर रोग का नाम दे रखा था। बस, फिर क्या था ! मैं पहले ही की तरह अपने सारे काम करने लगा। न वह थकान ही रही और न निराशा। कुछ ही दिनों में पहले ही की तरह हृष्ट-पुष्ट हो गया।

आपने सड़क के किनारे मजमे लगाकर दवाइयां बेचने वालों की बातें कभी सुनी होंगी। यह भी देखा होगा कि उन्हें घेर कर खड़े लोगों में कितने ही हृष्ट-पुष्ट दिखने वाले लोग इन बेकार की दवाइयों को खरीदकर ले जाते हैं। पर असल बात यह होती है कि ये मजमा लगाने वाले, इस दवाई से दूर होने वाले रोगों के लक्षणों को इस खूबी से व्यान करते हैं कि हर सुनने वाला अपने को रोगी समझने लगता है। इस प्रकार इन दुर्बल कल्पनाशील लोगों को ठगकर कितने ही लोग अपनी जेबें भरते हैं।

चिकित्सा के इतिहास में इस विषय के अनेकानेक प्रसंग भरे पड़े हैं कि कितने ही लोग कल्पना-जनित रोगों के बल पर रोगी बन जाते हैं। एक पत्रिका में प्रकाशित इस विषय का एक प्रसंग देखिये :

एक बार दो आदमी एक मकान में जाकर ठहरे। कुछ ही दिन पूर्व इस मकान में एक आदमी हैजे से मर चुका था। उनमें से एक आदमी तो उसी कमरे में सोया था, जिसमें हैजे का रोगी मरा था। दूसरा दूसरे कमरे में था। दोनों ही रातभर खूब मजे में सोते रहे। सवेरे किसी ने दूसरे कमरे में सोने वाले को बताया कि कुछ दिन पूर्व इस मकान में एक

रोगी हैजे से मर चुका है। यह सुनते ही मारे डर से उस का चेहरा पीला पड़ गया। कोई घंटे भर बाद सचमुच उसे हैजा हो गया पर दूसरे को कुछ भी नहीं हुआ। हालांकि वह बीमार वाले कमरे में सोया था।

इस प्रकार की बातें प्रायः सभी लोग पढ़ते-सुनते रहते हैं। वे यह भी मानते हैं कि वहम में नहीं पड़ना चाहिए। पर न जाने क्यों जब उनकी अपनी बारी आती है, तो वे फिर वहम का शिकार हो जाते हैं।

अतः प्रत्येक समझदार आदमी का कर्त्तव्य है कि वह कभी भी अपने रोगी होने की, व्यर्थ कल्पना न करे। यह कल्पना ही है, जो रोग को आक्रमण करने के लिए निमंत्रण देती है। ऐसी भ्रामक, हानिकारक कल्पना से सदा बचना चाहिये।

९

स्वास्थ्य पर विचारों का प्रभाव

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।
(जिसकी आत्मा, इन्द्रियां और मन प्रसन्न और निर्मल होते हैं, वही मनुष्य स्वस्थ कहलाता है।)

—वैद्यक भावमिश्र

किसी मानसिक चिकित्सक ने कहा है कि आपका सबसे बड़ा शत्रु आपका वह मित्र है जो मिलने पर कहता है कि तुम बीमार से लगते हो, क्या तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है? बस, ज्यों ही आप अपने मित्र की यह बात सुनते हैं, आपको लगने लगता है कि सचमुच आज मेरी तबियत ठीक नहीं है। मानो वह मित्र यह कहकर आपके मन में रोगी होने की कल्पना उत्पन्न करके, किसी रोग का बीज बो देता है।

मानसिक शक्ति कितनी प्रबल होती, और उसका शरीर पर कितना बड़ा प्रभाव पड़ता, इसका सबसे बड़ा प्रमाण ऊपर लिखा उदाहरण है। प्रबल कल्पना शक्ति वाले लोग एक प्रकार का सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) का खेल किया करते हैं। वे किसी कमजोर इच्छा शक्ति वाले आदमी को ढूंढ लेते हैं और उस पर अपनी कल्पना शक्ति का प्रभाव डालकर उससे जो कुछ कहलवाना चाहते हैं, कहलवा लेते हैं। वे उसके मन में मनचाहे विचार भी उत्पन्न कर सकते हैं। वे उसके सोचने-विचारने की शक्ति को पूरी तरह अपने वश में कर लेते हैं। वे केवल मन पर ही नहीं, शरीर पर उस विचार का परिणाम भी उत्पन्न कर सकते हैं। वे उस आदमी

से कहते हैं कि देखो, हम तुम्हें गर्म लोहे से दागते हैं। और इतना कहकर वे कोई ठंडा लोहे का टुकड़ा उसके शरीर से छुआ देते हैं। पर वह दुर्बल मन वाला आदमी तो यही समझता है कि मुझे गर्म लोहे से दागा गया। इसलिए परिणाम यह होता है कि जहां ठंडा लोहा छुआया गया था, वहां फफोला पड़ जाता है।

जब एक आदमी अपने मनोबल से दूसरे आदमी के शरीर पर फफोले उत्पन्न कर सकता है तो यदि वह अपने विचार या मनोबल से अपने शरीर का कोई रोग दूर कर ले तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है!

यह मानसिक प्रभाव मनुष्यों के मन पर ही नहीं, पशुओं के मन पर भी पड़ता देखा गया गया है। एक बार परीक्षण के तौर पर एक घोड़े के मन में यह विचार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया कि वह बीमार है। उसे कम्बलों से ढककर, कई तरह की दवाइयों की मालिश की जाने लगी। उसकी देख-रेख और टहल-सेवा बिल्कुल वैसे ही होने लगी, जैसे बीमारी की हालत में हुआ करती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि घोड़े ने खाना-पीना बन्द कर दिया। जब उसे जबर्दस्ती कुछ खिलाने की कोशिश की गई तो उसने खूब विरोध किया। इसी तरह का एक प्रयोग दूसरे घोड़े पर किया गया। उसकी एक टांग के निचले हिस्से में पट्टी बांध दी गई। ठीक वैसे ही जैसे चोट लगने पर बांधी जाती है। उसे दो दिन बांधे रखा और उससे कोई काम नहीं लिया गया। जब उसे तीसरे दिन छोड़ा तो वह लंगड़ाकर चलने लगा।

घर में माता-पिता की आशंकाओं का प्रभाव छोटे बच्चों पर पड़ता देखा जाता है। जो शंकाशील माताएं सदा यह कहती रहती हैं कि कहीं हमारा मुन्ना बीमार न हो जाए, उसे किसी की नजर न लग जाए, कोई उस पर टोना-टोटका न कर दे, उनके बच्चे किसी न किसी रोग में फंसे ही रहते हैं। जब पास-पड़ोस में कोई बच्चा बीमार होता है तो माताएं आशंका करने लगती हैं कि कहीं वही बीमारी हमारे बच्चे को भी न हो जाए। वे बार-बार बच्चे का निरीक्षण-परीक्षण करती रहती हैं और बच्चे के सामने उस बीमारी की चर्चा करती रहती हैं। बच्चे के मन पर उस रोग का भयंकर चित्र खिंच जाता है। कुछ समय बाद, यह दुर्बल मन

बालक उस रोग की कल्पना के प्रभाव से रोगी हो जाता है।

मैंने एक बार एक ऐसी स्त्री को देखा जो रात-दिन अपने बच्चे के स्वास्थ्य के लिए चिन्तित रहती थी। वह दिन में कई बार उसे कहा करती थी कि बेटा, तुम्हारा जी कैसा है, मुझे तो लगता है कि तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है, चेहरा उतरा हुआ-सा लग रहा है। साथ ही वह उसे तरह-तरह की दवाएं भी देती रहती थी। वह यह भी कहती रहती कि अगर मेरे कहे अनुसार नहीं रहोगे तो तुम्हें अमुक बीमारी हो जाएगी। दिन-रात की इस तरह की बातों का वही प्रभाव होता था जो होना चाहिये। उस घर के बच्चे अक्सर बीमार पड़े रहते।

प्रत्येक समझदार माता-पिता को इस प्रकार की आशंकाओं और दूषित कल्पनाओं से बचते रहना चाहिये। उन्हें अपनी मूर्खताओं के कारण बच्चों में किसी प्रकार के रोग आदि का भाव नहीं उत्पन्न करना चाहिये। ऐसी बातों का परिणाम यही होता है कि जिन रोगों से वे बच्चों को बचाना चाहते हैं, वे रोग खामखाह ही उन्हें आ घेरते हैं। जरा उन बालकों की हालत पर गौर कीजिए जिन्हें दिन-रात तरह-तरह के रोगों की चिन्ता से भयभीत रखा जाता है। जिन्हें यही कहा जाता है कि यह मत खाओ, वह मत खाओ, ऐसे मत रहो, वैसे मत रहो। इस तरह चेतावनियां सुनते-सुनते बच्चा यही समझने लगता है कि मैं या तो बीमार हूं या जल्दी ही बीमार होने वाला हूं। उसके मन में यह बात भी जमकर बैठ जाती है कि बहुत से काम ऐसे ही हैं जिनके करने से मनुष्य रोगी हो जाता है। अतः प्रत्येक माता-पिता को यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिये कि इस तरह की बातों से बच्चों का शारीरिक और मानसिक दोनों तरह का स्वास्थ्य चौपट हो जाता है। बातें करना छोड़ देने भर से भी काम नहीं चलेगा। उन्हें अपने मन से ही इस तरह की भावना को निकाल देना होगा।

एक बार एक स्त्री ने बताया था कि उसने पत्रिका में एक ऐसी कहानी पढ़ी, जिसमें दुर्घटनाओं की लम्बी शृंखला थी। उसके प्रभाव से वह स्त्री बीमारों की तरह दिन भर बिस्तर पर लेटी रही। आप उस कहानी को प्रभावशाली कह सकते हैं। पर मैं उसे दुष्ट प्रभाव उत्पन्न

करने वाली कहूंगा।

आपने स्वयं भी कई बार यह अनुभव किया होगा कि कभी मामूली सी तबियत खराब होने पर जब आप बिस्तर में लेट जाते हैं तो तबियत की वह मामूली खराबी मामूली न रहकर, बढ़ जाती है। और जब कभी उसकी उपेक्षा करके आप अपने काम पर निकल पड़ते हैं तो दिन भर यह ध्यान भी नहीं आता कि आज तबियत कुछ खराब थी। और आप प्रतिदिन की तरह ही अपना काम करते रहते हैं।

जो लोग सदा प्रसन्न रहते हैं और अपने को स्वस्थ और ताजा समझते हैं, वे न तो बीमार पड़ते हैं और न मौसम की खराबी की शिकायत करते हैं। उनका स्वस्थ संकल्प वाला मन उनके शरीर को स्वस्थ रखने में सहायता देता है और स्वस्थ शरीर के कारण उनके मन-मस्तिष्क में दुर्बल विचारों को स्थान नहीं मिलता। इस प्रकार मन और शरीर एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

जब कभी हम बीमार पड़ते हैं तो अनेक लोग हमें देखने आते हैं। उनमें से जो हँसमुख और उत्साही होते हैं, उनसे बात करके मन में आशा और उत्साह का संचार होता है। जितनी देर वे पास रहते हैं, हमें अपने बीमार होने का भाव नहीं रहता। परन्तु जब कोई मनहूस शकल वाला, उदास और निराश व्यक्ति आता है तो हम भी अपने को ज्यादा अशक्त और दुःखी अनुभव करने लगते हैं। वे जब चले जाते हैं, तब भी अपने पीछे एक प्रकार की उदासी छोड़ जाते हैं।

मेरे एक मित्र हृदय-रोग से पीड़ित थे। उन्हें देखने एक ऐसे सज्जन आए जो मनहूस तो थे ही लोक-व्यवहार में भी बिल्कुल अनाड़ी थे। बीमारी के बारे में पूछने के बाद कहने लगे कि यह रोग तो असाध्य है। एक बार लग जाने पर पीछा ही नहीं छोड़ता। हमारे पड़ोस में भी एक आदमी को यह रोग हो गया था। बहुत इलाज करवाया पर बेचारा बच नहीं सका। इन बातों का रोगी के दुर्बल हृदय पर अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ा और उसे दिल का दौरा पड़ गया।

बीमारों को प्रसन्न रखने, उनमें आशा और उत्साह बनाए रखने की बहुत आवश्यकता होती है। यदि बीमार के परिवार वाले, मित्र, सम्बन्धी

तथा इलाज करने वाले, उसे प्रसन्न, आशावान् और उत्साही बनाए रखने का प्रयत्न करें तो इसका रोगी पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। भारतीय आयुर्वेद शास्त्र में वैद्य का हंसमुख, मधुर-भाषी और सौम्य होना आवश्यक बताया गया है। ऐसे वैद्यों-डाक्टरों को ही यश मिलता है, जो रोगी का विश्वास पा लेते हैं और उसमें स्वस्थ होने की आशा का संचार कर देते हैं। अति गंभीर, कटु भाषी और उत्साहहीन चिकित्सक शास्त्र में योग्य होने पर भी असफल हो जाते हैं।

इसके विपरीत असाध्य रोगी को भी यह दम-दिलासा दिया जाए और उसे बताया जाए कि कोई चिन्ताजनक बात नहीं है, और तुम शीघ्र ही ठीक हो जाओगे तो उसके मन पर इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

रोगी को आशावान्, उत्साही और प्रसन्न रखने की बड़ी आवश्यकता होती है। यदि चिकित्सक, सम्बन्धी और मित्रगण सब मिलकर, विश्वास दिला दें कि तुम पहले से अच्छे हो, आज तो बिल्कुल ठीक दिख रहे हो तो उसे स्वास्थ्य-लाभ करने में बड़ी सहायता मिलती है।

बहुत-से चिकित्सक इसके पक्षपाती हैं कि यदि रोगी ठीक हो सकने योग्य न हो तो उसे स्पष्ट बता देना चाहिये। उनका कहना है कि रोगी को अपने बारे में ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है और चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वह रोगी के इस अधिकार का उचित आदर करे। पर ऐसा सोचना भ्रमपूर्ण है। बात यह है कि कोई भी चिकित्सक पूरे आत्म-विश्वास के साथ यह नहीं कह सकता कि उसका निर्णय और निदान अन्तिम है। कई बार आपने सुना होगा कि किसी चिकित्सक ने किसी रोगी को असाध्य बताकर उसका इलाज करना छोड़ दिया और उसी रोगी को दूसरे चिकित्सक ने ठीक कर दिया। अब आप ही बताइये, कि क्या कोई भी चिकित्सक दावे के साथ यह घोषणा कर सकता है कि उसकी कही बात ही अन्तिम सत्य है? निश्चय ही नहीं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि भयंकर से भयंकर रोग से पीड़ित रोगी भी जीने की अपनी लालसा को नहीं छोड़ पाता। उसे चाहे जितना कष्ट उठाना पड़े और उसे चाहे जितना खर्च करना पड़े वह जीवित

रहना चाहता है और स्वस्थ होना चाहता है। ऐसे रोगी कई बार किसी योग्य चिकित्सक, किसी खास दवाई, हवा-पानी के बदल, टोने-टोटके या किसी सन्त-महात्मा के आशीर्वाद या किसी झरने, कुण्ड या तीर्थ में स्नान करने से ठीक होते देखे गए हैं। वे अपने अच्छा होने का कारण इनमें चाहे जिस चीज को समझें पर वास्तव में उनका मानसिक बल ही इसका एकमात्र कारण होता है।

हम लोगों में एक बड़ी कमी है तो यही है कि हम अपनी आत्मशक्ति को, मन के संकल्प की शक्ति को नहीं पहचान पाते। ठीक जैसे हमारे शरीर में यह गुण मौजूद है कि शरीर की जो घिसाई होती है, उसकी क्षति-पूर्ति शरीर स्वयं कर लेता है। यदि कोई घाव हो जाता है तो वह भी कुछ दिनों में स्वयं पुर जाता है। इस प्रकार हमारे मन में भी मन-चाहा प्राप्त कर लेने की शक्ति विद्यमान है। जब हम इस शक्ति को भली प्रकार पहचान लेंगे और उस शक्ति को जगा लेंगे तो सहज में ही शारीरिक सुख और मानसिक शान्ति प्राप्त हो जाएगी।

१०

बुढ़ापे से बचिये

आचाराल्लभते ह्यायुः ।
(मनुष्य सदाचार से ही दीर्घायु प्राप्त करता है ।)

— मनुस्मृति

आप ने अकसर लोगों को कहते सुना होगा कि अमुक व्यक्ति तो सठिया गया है। माने साठ का हो गया है इतना ही नहीं, इसका व्यंग्यार्थ यह है कि उसकी अकल ठिकाने नहीं और शरीर में भी दम नहीं रहा। पर यह विशेषण साठ साल की अवस्था वालों के ही लिए प्रयुक्त नहीं होता, तीस वर्ष वाले उन लोगों के लिए भी प्रयुक्त होता है जो कम-समझी की कोई बात करते हैं या जिनमें उत्साह मर चुका होता है। इसके विपरीत आपने यह भी सुना होगा कि 'साठा सो पाठा'। जो साठ का हुआ, वह तो अभी पट्ठा है। ये दोनों ही कथन लोक में प्रचलित हैं और दोनों में ही सचाई है। जो तीस की उमर में ही शरीरिक और मानसिक शक्तियों को खो बैठे, वह बूढ़ा और जो ताजा दम हो, जिसमें कर्मठता और उत्साह की कमी न हो, वह साठ की उमर होने पर भी जवान। इस विवेचन से यह बात सामने आई कि बुढ़ापे का कम से कम उमर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। उसे तीस की उमर में बुलाया जा सकता है और सौ की उमर में न बुलाए तो पास नहीं फटकेगा। वह बिन बुलाए कभी आता नहीं।

शरीर और मन के रहस्यों की छान-बीन करने वाले विद्वानों ने उर्दू

के इस लोकप्रिय शेर को झूठा साबित कर दिया है कि :—

जाके जो न आए, वह जवानी देखी।
आके जो न जाए, वह बुढ़ापा देखा॥

अब जवानी जाकर लौट आती है और बुढ़ापा आकर वापस चला जाता है। पर जवानी का मन-प्राण से स्वागत करने के लिए और बुढ़ापे से नाता तोड़ने के लिए पूरी तैयारी होना जरूरी है।

व्याकरण की दृष्टि से 'बुढ़ापा' भाववाचक संज्ञा है। यह भावना में रहता है। वस्तु में नहीं। जिसके मन में बुढ़ापे का भाव नहीं होगा, उसमें बुढ़ापा कहां से आएगा! उसमें बुढ़ापे का अभाव होगा।

असल बात यह है कि अभी तक लोगों की समझ में यह बात नहीं आई है कि लोग अपनी मनोवृत्तियों के कैसे और कितने दास बने हुए हैं। और यह कि हमारे भावों और विचारों का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। साधारणतया लोग समझते हैं, मनुष्यों की आयु का ह्रास होता जा रहा है। हमारे पूर्वज जितने दीर्घायु हुए, हम उतने नहीं हो सकते। वास्तव में उन्हें यह कहना चाहिए कि क्योंकि हमारे जीवन में सादगी, सरलता और निश्चिन्ता की कमी हो गई है, इसलिए पूर्ण आयु पाना सम्भव नहीं है। तो इस सादगी को छोड़कर आडम्बर, सरलता को छोड़कर कुटिलता और तरह-तरह की काल्पनिक चिन्ताओं से ग्रस्त होने की जिम्मेदारी हमारी ही है। नियम-संयम विहीन, ईश्वर और प्रकृति से दूर हमारा जीवन पथभ्रान्त हो गया है पर इसके लिए तो हम स्वयं ही कारण हैं। सृष्टिकर्त्ता ने अल्पायु होने का हमें शाप नहीं दिया है। और मानव जाति के दिनोंदिन अल्पायु होते जाने की बात सोचना तो वैसे भी अपनी आयु को क्षीण करना है।

जो लोग यह सोचते हैं कि चालीस के हुए तो यौवन गया। पचीस के हुए तो बुढ़ापा आया और साठ के हुए तो हर तरह से बेकार हो गए, वे स्वयं ही बुढ़ापे को बुलाते हैं। क्योंकि हमारे विचार अग्रदूत का काम करते हैं। जहां बुढ़ापे का विचार आ गया, वहां बुढ़ापा पहुंचा ही समझिये। क्यों कि बुढ़ापा जब तक मन में नहीं आएगा तब तक तन में भी नहीं आ सकता।

इसलिए मन से इस विचार को बाहर निकालने की बड़ी आवश्यकता है कि अमुक अवस्था में बुढ़ापा आ जाता है। और मेरी उमर के दूसरे लोग बूढ़े हो गए हैं तो मैं भी बूढ़ा ही हूं। आप अपने विचारों और कार्यों में युवकोचित उत्साह रखें और नए कार्यों में दिलचस्पी लें, कोई नया काम सीखना शुरू करें। ऐसा मत सोचें कि हम अब बूढ़े तोते हो गए और बूढ़े तोते पढ़ते नहीं। आप न तो बूढ़े ही हुए हैं और न तोते ही हैं।

असल में होता यह है कि जब हमारे जीवन से कर्मठता और मनोरंजन की प्रवृत्ति दूर हो जाती है तो हम उदास और हताश होकर अपने को एकाकी अनुभव करने लगते हैं। तब रह-रहकर मन में यह बात आती है कि हमारा जीवन निरर्थक है। अब हम किसी काम के नहीं रहे। हम परिवार पर बोझ ही हैं। यही वह विचार है जो हमें मृत्यु-मुख में ले जाता है।

बुढ़ापे को दूर करने की एक संजीवनी बूटी है। यह बूटी आपके मन में ही है। कहीं बाहर नहीं। कुछ लोग सफेद बालों में खिजाब लगाकर, नकली दांत लगवाकर युवा होने का स्वांग तो रच सकते हैं, पर युवा बन नहीं सकते। वैसे बाल सफेद होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि आप बूढ़े हो गए। एक विद्वान् ने कहा है :

न तेन भवति वृद्धो येनास्य पलितं शिरः॥

अर्थात् सिर के बाल पक जाने से आदमी बूढ़ा नहीं हो जाता।

आपने प्रायः देखा होगा कि जो लोग पचपन या साठ वर्ष तक की अवस्था में रिटायर्ड होने से पहले प्रतिदिन नियमित रूप से अपना काम ठीक-ठाक करते रहते हैं, वे ही रिटायर्ड होने पर यह समझने लगते हैं कि अब हम किसी काम के लायक नहीं रहे। और यही घातक विचार उन्हें ले बैठता है।

यदि हम मन में यह बात अच्छी तरह बैठा लें कि हम सदा जवान रहेंगे, कभी बूढ़े नहीं होंगे तो फिर हम शरीर से भी सदा जवान ही रहेंगे। वृद्धावस्था विजय-यात्रा का आधा मार्ग इस दृढ़ विचार से ही तय हो जाएगा।

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

गीता में भी लिखा है।

मन एव मनुष्याणां कारणां बन्ध-मोक्षयोः।

यह मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। तो यह मन ही है, जो इस शरीर पर नियंत्रण रखता है। इस एक को सिद्ध कर लेने से शेष सभी सिद्ध हो जाते हैं।

एकं साधे सब सधें।

एक बड़ा अवगुण हम लोगों में यह है कि हम अनिष्ट की कल्पना करने में बड़े तेज हैं। इस प्रकार अपने आप पैदा की हुई इन चिन्ताओं के कारण हम सदा चिन्तित रहने लगते हैं। हमारे चेहरे पर चिन्ता-रेखाएं स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। हमारी जीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है। रात को ठीक से नींद भी नहीं आती। भूख भी मर जाती है। दिन-रात चिन्ता रूपी घुन हमें खोखला कर देता है। चिन्ता की इस चक्की में हम बुरी तरह पिस जाते हैं।

इसके विपरीत जो लोग प्रसन्न रहते हैं, ऊल-जलूल चिन्ताओं से अपने को मुक्त रखते हैं, वे सदा युवा बने रहते हैं। जो लोग कोई नया काम करने या नई बात सीखने के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं, उनकी जीवनी शक्ति में नित नई स्फूर्ति आती रहती है, पर जो लोग यह सोचते हैं कि अब हमारी उमर कुछ नया करने या सीखने की नहीं रही, उनकी जीवनी शक्ति नष्ट जाती है।

यदि हम सदा युवक बने रहना चाहते हैं तो हमें उन सब बातों को भूल जाना होगा जो हमारे लिए दुःखद, अप्रिय और खेदजनक रही हैं। उनको याद करके और दुःखी होकर हमें अपनी जीवनी शक्ति को नष्ट नहीं करना चाहिये।

हमारे स्वर्गीय राष्ट्र नेता श्री जवाहर लाल नेहरू, पचहत्तर वर्ष की अवस्था में भी सारे राष्ट्र के नेतृत्व के बोझ को सभाले रहे। वे प्रतिदिन सोलह घंटे कार्य करते थे। दुनिया भर की समस्याओं का सामना उन्हें करना पड़ता था। फिर भी उनके चेहरे पर कोट में लगे गुलाब की तरह मुस्कान खिली रहती थी। क्या दूसरा कोई व्यक्ति यह कहने की हिम्मत कर सकता है कि उसकी जिम्मेदारियां श्री नेहरू से भी बढ़ा-चढ़ी हैं।

हमारे शरीर की रचना इस ढंग की है कि अपने पोषण के लिए

बहुत-सी चीजें दूसरों से प्राप्त होती हैं। यही दशा मन की है। मन को भी ज्ञान और रंजन की आवश्यकता होती है। इसे काम में लगाए रखना होता है। कहते भी हैं कि खाली मन शैतान का घर।

जब यह खाली होता है तो दुष्ट कल्पनाओं और संकल्पों-विकल्पों में उलझा रहता है। इससे मानसिक शक्तियों का ह्रास होता है और मन बूढ़ा होने लगता है। मन का प्रभाव सीधा शरीर पर पड़ता है और उसमें बुढ़ापा आ जाता है।

सोच-विचार की विशेष शक्ति के कारण ही मनुष्य अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है। पर मनुष्य इस शक्ति से जहां बहुत से अच्छे कार्य करता है, वहां इस शक्ति का दुरुपयोग करके हानि उठाता है। मनुष्येतर प्राणि—पशु-पक्षि—साधारणतया एक निश्चित आयु-सीमा तक जीवित रहते देखे गए हैं। पर मनुष्य अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं। पशुओं के निश्चित आयु सीमा भोगने का कारण यह है कि वे किसी प्रकार की चिन्ता में डूबे नहीं रहते। विशेष रूप से अपनी आयु और जीवन के बारे में तो वे तनिक भी नहीं सोचते। सचाई तो यह है कि उनमें सोचने-विचारने की शक्ति ही नहीं होती। यही कारण है कि वे अपने पूरे आयु-मान तक जीते हैं।

वेदों में सौ वर्ष तक 'अदीन' रहते हुए जीने की बात लिखी हुई है। विभिन्न देशों में जन-गणना के आंकड़ों से पता चलता है कि कितने ही शतायु लोग सब जगह हैं। कुछ की आयु तो सवा सौ वर्ष तक की है। शरीर-शास्त्रियों का कहना है कि सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जिया जा सकता है।

मन की प्रभावकारी शक्ति का एक जीता-जागता उदाहरण निम्न-लिखित घटना है।

कोई बीस वर्ष की अवस्था की एक युवती को उसके पति ने छोड़ दिया। इस धक्के से वह नीम पागल जैसी हो गई। वह आजीवन अपने पति की प्रतीक्षा करती रही। उसका विचार था कि एक न एक दिन आकर वह मुझे अपना लेगा। उसकी सहत्तर वर्ष की अवस्था में में देश के कुछ प्रसिद्ध डाक्टरों ने उसे देखा। पर कोई भी उसे बीस वर्ष से अधिक की न

बता सका। न तो उसका एक भी बाल पका था और न चेहरे पर एक झुर्री पड़ी थी। उस का शरीर भी सुडौल और सुगठित था। वह सदा यही समझती रही कि मैं अभी युवती हूं और मेरा पति आने वाला है। बुढ़ापे की बात कभी उस के मन में आई ही नहीं। आदमी की अवस्था बढ़ जाने पर तो एक ही बात सामने आनी चाहिये कि उसके ज्ञान और अनुभव में काफी वृद्धि हो गई है।

युवा बने रहने के लिए युवजनोचित प्रवृत्ति, आशा और उत्साह-पूर्ण जीवन अपेक्षित है। एक अस्सी वर्ष की अवस्था वाले सज्जन से जो युवक लगता था, किसी ने पूछा कि इसका क्या रहस्य है? उसने बताया कि मैं अध्यापन का कार्य करता हूं। मैं दिन का बहुत-सा समय किशोरों के बीच बिताता हूं। पढ़ाने के अतिरिक्त मैं उनके साथ खेलों में भी रुचि लेता हूं। यही कारण है कि मैं अपने को सदा युवक अनुभव करता हूं। बुढ़ापे का मुझे कभी ध्यान ही नहीं आया। इन सज्जन का अनुभव हम सबके बड़े काम का है।

दिन में जब कभी हमें कोई चिन्ता आ घेरती है तो वह ज्यादा देर तक हमारे मानस में नहीं ठहरती। कारण, दिन में हमारा अनेक तरह के कार्यों, व्यक्तियों और दृश्यों से सामना होता है। चिन्ता-धारा को तोड़ने में ये सारी चीजें सहायक होती हैं। किन्तु रात को सोते समय जो चिन्ता आ घेरती है, उससे छुटकारा पाना कठिन होता है। वह नींद को तो भगा ही देती है, और चिन्ता में घुलते-घुलते ही यदि नींद आ जाए तब तो उसका प्रभाव और भी भयंकर और विनाशकारी होता है। वह हमारे अन्तर्मन में पैठकर हमारे मानसिक जगत में पक्का डेरा डाल लेती है। नींद न आने से दिन भर के थके शरीर को आराम नहीं मिलता और शरीर शक्ति-संचय नहीं कर पाता।

शरीर-विज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर भी हम इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि बुढ़ापा प्राकृतिक चीज नहीं है। मानव-शरीर की रचना जिन सूक्ष्म कोषों से हुई है, वे निरन्तर नष्ट होते रहते हैं, और नए कोष बनते रहते हैं। इस प्रकार हमारे शरीर के मूल घटक ये कोष नित नवीन बने रहते हैं। ऐसी दशा में वृद्धावस्था का कारण हमारे विचारों और

भावनाओं के अतिरिक्त और क्या हो सकता है।

कुछ लोगों का स्वभाव सदा प्रसन्न रहने का होता है। कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ उन पर भी आती हैं, पर वे इनसे चिन्तित या दुःखी नहीं होते। यही कारण है कि वे शरीर और मन से सदा स्वस्थ बने रहते हैं। विपत्ति में भी विचलित न होने वाले इन लोगों से मिलने-जुलने वाले लोग उन की हिम्मत की दाद तो देते हैं, पर अपने को वैसा बनाने का यत्न नहीं करते। हमें ऐसे धीर स्वभाव लोगों का अनुकरण करना चाहिये। अस्सी वर्ष की अवस्था में भी कुछ लोगों के सिर के बाल सफेद नहीं होते। उनकी बत्तीसी का एक भी दाँत गिरा हुआ नहीं होता। इसका कारण क्या है? क्या उनके चिरयुवा मन के अतिरिक्त और भी कोई कारण हो सकता है!

ऊँचे आदर्शों और प्रसन्नतापूर्ण विचारों में यौवन-रक्षा की विलक्षण शक्ति है। हमें इस शक्ति को जगाना और बढ़ाना चाहिये। अपने मन और मस्तिष्क को नए विचारों, कार्यों और मनोरंजन के साधनों के लिए सदा प्रस्तुत रखना चाहिये। कुछ नया सीखते रहना चाहिये और सदा आगे बढ़ने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। जिन-जिन कार्यों से मनुष्य की आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक और सांसारिक उन्नति होती है, उन कार्यों से यौवन-रक्षा में भी बहुत सहायता मिलती है। जो लोग बुरे कार्यों से बचे रहते हैं, वे सदा प्रसन्न बने रहते हैं और जो सदा प्रसन्न रहते हैं, वे स्वस्थ और युवा रहते हैं।

अपने आप को सदा ऐसे कार्यों में लगाए रखना, जिनसे यह अनुभूति हो कि हमारा जीवन सार्थक हो रहा है, जीवन-शक्ति को बढ़ाने की अचूक औषध है। जो लोग लोकोपकारक कार्यों में लगे रहते हैं, जिन्हें सदा यह अनुभव होता रहता है कि हमें अभी बहुत कुछ उपयोगी कार्य करना है, वे अपने को क्षुद्र स्वार्थों और क्षुद्र कार्यों से दूर रखते हैं। इस प्रकार उनकी आत्मा निर्मल और मन सदा शान्त रहता है। ऐसे ईश्वर-निष्ठ लोग कठिनाइयों और विपत्तियों को सहज भाव में झेल लेते हैं और उनके कुप्रभाव से बचे रहते हैं। न उन्हें मृत्यु का भय सताता है और न कोई आशंका।

११

आत्म-विश्वास

सब की आत्मा एक सरीखी है। सब की आत्मा की शक्ति समान है। बस, कुछ की शक्ति प्रकट हो गई है। दूसरों को प्रकट होना बाकी है।

—महात्मा गांधी

क्रिया सिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।
(कार्यसिद्धि साधनों पर निर्भर न होकर महापुरुषों के सत्व (आत्म-विश्वास) पर निर्भर होती है।)

दुनिया की बड़ी से बड़ी शक्ति भी दृढ़ आत्म-विश्वास के आगे झुकती रही है और झुकती रहेगी। ईसा, बुद्ध और गांधी इस के जीते जागते प्रमाण हैं। ईसा के पास न तो राज्य की शक्ति थी, न धन और न बल की। गौतम तो इन तीनों शक्तियों को ठुकराने के बाद ही बुद्ध बने थे। महात्मा गांधी के विपक्ष में वह शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य था, जिसका विस्तार दोनों गोलार्द्धों तक फैला था, उसमें सूर्यास्त नहीं होता था। महात्मा गांधी के पास शस्त्रास्त्रों के रूप में सत्य और अहिंसा थे। पर ब्रिटिश साम्राज्य अपनी समस्त शक्तियों के साथ परास्त हुआ, निहत्था गांधी विजयी।

एक वैज्ञानिक ने कहा था कि यदि मुझे धरती के बाहर खड़े होने भर की जगह मिल जाए तो मैं पृथ्वी को हिला सकता हूं। कई वर्षों बाद स्वामी रामतीर्थ ने कहा था कि धरती को हिलाने के लिए धरती से

बाहर खड़े होने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है, अपनी आत्मा में पैठने की। आत्म-शक्ति जो कि आत्म-विश्वास का ही दूसरा नाम है, का साक्षात्कार करके कोई भी आदमी धरती को हिला सकता है। ईसा, बुद्ध और गांधी ने यही किया था।

यदि हमारे अन्दर दृढ़ आत्म-विश्वास है तो बड़े-से-बड़ा कार्य कर सकते हैं और यदि नहीं है तो छोटे-से-छोटा कार्य भी नहीं कर सकते। जिसमें जितना आत्म-विश्वास होता है, उसी के अनुपात से उसे अपने कामों में सफलता मिलती है।

कुछ लोग आत्म-विश्वास का अभाव होने के कारण किसी नए काम में हाथ ही नहीं लगा पाते। कुछ दूसरे जिनमें थोड़ा ही आत्म-विश्वास होता है काम शुरू तो कर डालते हैं, पर ज्यों ही कोई कठिनाई आती है, छोड़-छाड़कर भाग खड़े होते हैं। पर दृढ़ आत्म-विश्वास वाले लोग शुरू किये हुए कार्य को अनेक कठिनाइयां आने पर भी पूरा किये बिना नहीं छोड़ते।

यदि हम आत्म-विश्वास के साथ किसी काम को शुरू करें और कोई व्यक्ति हमें कहे कि यह काम शुरू करके आपने अच्छा नहीं किया, यह आपसे नहीं हो सकता तो उस व्यक्ति को हमें अपना शत्रु ही समझना चाहिये, क्योंकि वह हमें अनुत्साहित कर रहा है। उसे स्पष्ट शब्दों में यह बता देना चाहिये कि मैंने यह काम सोच-समझकर शुरू किया है और मैं इसे पूरा करके ही छोड़ूंगा। हां, कोई कार्य शुरू करने से पहले खूब सोच लीजिए, मित्रों और उस काम के जानकार लोगों से सलाह-मशविरा भी कर लीजिए।

मानव-समाज ने अब तक जो उन्नति की है, वह ऐसे ही महापुरुषों द्वारा हुई है जिनका आत्म-विश्वास असीम था। जब लोग उन्हें सनकी और पागल कहकर उनकी हंसी उड़ाते थे, तब भी वे अपने संकल्प से विचलित नहीं होते थे। वे हंसी उड़ाने वालों को उपेक्षाभाव से देखते थे और अपनी सारी शक्ति अपने विचारों को कार्य का रूप देने में लगाते थे। और जब वे पूर्ण-काम—सफल मनोरथ होते थे तो उन्हें पागल और सनकी कहने वाले लोग दंग रह जाते थे, और उनके प्रशंसक बन जाते

थे। यदि संसार में इस तरह के दृढ़ संकल्पशील महामानव उत्पन्न न हुए होते तो संसार इतनी उन्नति कभी न कर पाता और मानव जंगली लोगों जैसी हालत में होता।

वास्तव में कोई भी कार्य करने से पहले हमें अपने मन में उस कार्य की सफलता का पूर्ण विश्वास होना आवश्यक है। एवरेस्ट की चोटी पर विजय प्राप्त करने वालों के मन में यदि सफल होने का दृढ़ विश्वास न होता तो यात्रा पर ही न निकलते। इसलिए पहले मन में सफलता का विश्वास होना और अपने को सफलता के योग्य बनाना आवश्यक होता है। पहले दृढ़ निश्चय और फिर तैयारी। यही सफलता का मूल मंत्र है। हमें एक बात और जान लेनी चाहिये कि कोई भी काम यों ही संयोग वश नहीं होता। प्रत्येक कार्य के लिए एक कारण की आवश्यकता होती है। और वह कारण भी उतना ही बड़ा होना चाहिये।

हम चाहे जितने पढ़े-लिखे हों, और चाहे दूसरे कई गुण भी हममें हों, परन्तु हमें मिलने वाली सफलता, जितना हमें विश्वास है, उससे अधिक नहीं हो सकती। जिस आदमी को यह विश्वास होता है कि 'मैं अमुक कार्य को भली प्रकार कर सकता हूं' वही उस काम को कर पाता है। और जो यह समझता है कि यह काम मेरे बल-बूते का नहीं है, वह उस काम को नहीं कर पाएगा। यह ऐसा नियम है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। एक विद्वान् का कहना है : कि दुर्बल चित्त अपनी कामनाओं को केवल स्वप्न में साकार देखते हैं और सबल अपने स्वप्नों को कार्य रूप में परिणत करके।

हो सकता है कि लोग आपकी हँसी उड़ाएं और आपको हवाई किले बनाने वाला समझें, परन्तु यदि आप में दृढ़ आत्म-विश्वास और कर्मठता होगी तो ये हँसने वाले एक दिन लज्जित होंगे। हम ज्योंही अपने ऊपर विश्वास करते हैं, त्योंही हमारे भीतर छिपी सारी शक्तियां प्रस्फुटित हो उठती हैं और हमारे स्वप्न सत्य होने लगते हैं। इसके विपरीत अपने ऊपर अविश्वास करने से शक्ति के स्रोत सूख जाते हैं और हम दरिद्र हो जाते हैं। अपने ऊपर विश्वास परम सत्ता पर विश्वास है। यह जीव को ब्रह्म बना देता है, क्षुद्र को महान् बना देता है। वास्तव में कोई भी

क्षुद्र नहीं है। क्षुद्र तो हम तभी बनते हैं, जब अपने को क्षुद्र समझने लगते हैं। जिस दिन मनुष्य अपने भीतर के परमेश्वर को पहचान लेता है, उस दिन वह स्वयं भी परमेश्वर बन जाता है। फिर उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं रह जाता।

एक बार नेपोलियन की सेना का एक सिपाही कहीं दूर से नेपोलियन के नाम एक पत्र लेकर आया। वह घोड़े पर सवार होकर बड़ी दूर से आया था। रास्ते के कष्टों, भूख-प्यास और थकान के कारण घोड़ा यहाँ पहुंचते ही मर गया। नेपोलियन ने पत्र पढ़कर उसका उत्तर लिखवाया और सिपाही को देकर कहा कि तुम मेरे घोड़े पर सवार होकर तुरंत यह उत्तर पहुंचाओ। सिपाही ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "महामान्य, मैं आपके घोड़े पर सवारी करने के योग्य नहीं हूं। वह तो आपके ही योग्य है।" इस पर नेपोलियन ने उस सिपाही को जो उत्तर दिया था, वह संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिए स्मरण रखने योग्य है। नेपोलियन ने कहा था, "संसार में कोई भी ऐसी बढ़िया वस्तु नहीं है, फ्रांस का सिपाही जिसके योग्य न हो।"

वास्तव में संसार की श्रेष्ठतम वस्तुएं हमारे उपयोग के लिए हैं। पर हम उस सिपाही की तरह अपने को अयोग्य समझे बैठे हैं। संसार की सर्वोत्तम वस्तुएं जो सबको नहीं मिल पातीं, उसका एक मात्र कारण यही है कि लोग अपने को अयोग्य समझते हैं। जब हम अपने को बौना समझे बैठे हों तो देवों के करने योग्य महत् कार्यों को कैसे कर सकते हैं।

मान लीजिए एक आदमी अपनी जेब में सौ रुपए का नोट रखकर भूल गया। जब वह बाजार पहुंचा तो उसे कुछ रुपयों की आवश्यकता पड़ी। उसने बिना अपनी जेब टटोले सोच लिया कि मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है, और लौट आया। बस, आज हममें से बहुतों की यही हालत है। हम अपनी शक्ति और योग्यता को भूल बैठे हैं। और दरिद्र बने हुए हैं। जब हम पहले से ही अपने आपको अयोग्य, असमर्थ और अभागा समझते हैं तो फिर हम योग्य, समर्थ और भाग्यवान् कैसे बन सकते हैं। जो लोग बहुत बड़े कामों को कर सकने में समर्थ होते हैं, वे भी अपनी शक्ति को ठीक से न पहचान सकने के कारण केवल कुछ छोटे-

छोटे काम करके ही रह जाते हैं और कोई बड़ा काम नहीं कर पाते। वे अपनी पूरी शक्ति से क्योंकि अपरिचित होते हैं, इस लिए उसका पूरा-पूरा उपयोग नहीं कर पाते। सच तो यह है कि संसार में बहुत थोड़े लोग ही अपनी शक्तियों से परिचित होते हैं और उनका उपयोग कर पाते हैं। बहुत बड़ी संख्या उन्हीं लोगों की है, जो शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी अपने अज्ञान के कारण उसका सौवां भाग भी काम में नहीं ला पाते।

जो कोई भी अपनी अनंत शक्ति से परिचित हो जाता है, वह स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, अरविन्द या गांधी बन जाता है। सारी दुनिया उसके पीछे चल पड़ती है। वह अकेला दुनिया को हिला देता है। उसे संसार-विजय के लिए सेना और शस्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह बाहर किसी परमाणु बम का विस्फोट न करके अपने भीतर के अणु की उर्जा का विस्फोट करके शक्ति के अनन्त स्रोत का स्वामी बन जाता है।

जो आदमी अपने को मिट्टी का लौंदा समझता है, वह अवश्य कुचला जाएगा। धूल पर सभी पांव रखते हैं, पर अंगारों पर आज तक किसी ने जान-बूझकर पांव नहीं रखा। जो व्यक्ति अपनी शक्तियों पर विश्वास रखता है, जो कठिन से कठिन कार्यों को भी अपने करने योग्य समझता है, वह मानो अपने चारों ओर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर लेता है जो उसके सफल-मनोरथ और विजयी होने के लिए सर्वथा अनुकूल होती है। जिस क्षण हम दृढ़तापूर्वक यह निश्चय कर लेते हैं कि इस काम को अवश्य करेंगे, समझ लेना चाहिये कि आधा काम हो गया।

आपने प्रायः लोगों को यह कहते सुना होगा कि अमुक व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली है। मिट्टी को भी हाथ लगाता है, तो सोना हो जाती है। उसके काम अपने आप हो जाते हैं। पर विश्वास रखिये कि ऊपर लिखी बात सच होते हुए भी, उसका कारण भाग्य नहीं होता। वह तो विचारशील, दृढ़प्रतिज्ञ और आत्म-विश्वासी होने के कारण होता है। भूल से लोग इसे भाग्य समझ बैठते हैं। दृढ़ निश्चयी पुरुष जिस किसी क्षेत्र में भी कार्य करता है, अपने आत्म-विश्वास से तो शक्ति प्राप्त करता ही है, उसके आस-पास के लोग भी उसकी योग्यता और कार्य-कुशलता से प्रभावित

होकर उसके सम्बल बन जाते हैं। वह दूसरों में भी कार्य शक्ति का संचार करता है और दूसरे उसे उतना ही उत्साहित करते हैं। जहां शक्तिशाली दो हाथ आगे बढ़ते हैं, वहां दस हाथ और सहयोग के लिए बढ़ आते हैं। फिर ऐसे आदमी की सफलता में किस को सन्देह हो! संसार की अनेक आदिम जातियों में यह विश्वास पाया जाता है, कि हम जिन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं, उनकी सारी शक्तियां विजेता के शरीर में प्रवेश पा जाती हैं। एक प्रकार से यह विश्वास सत्य पर आधारित है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि जब हम किसी एक कार्य में सफल होते हैं तो हममें उत्साह की एक ऐसी उमंग पैदा हो जाती है, जो हमें उससे भी कठिन और बड़े कामों को करने के योग्य बना देती है। परिणाम यह होता है कि हम उत्तरोत्तर अधिक कार्य करने में समर्थ होते जाते हैं। इसलिए आदिवासियों के इस विश्वास में कुछ भी अनुचित नहीं है।

यदि हम कोई बड़ा काम करना चाहते हों तो सर्वप्रथम अपनी विचारशक्ति और ध्यान उस पर टिका दें और इस बात का दृढ़ विश्वास कर लें कि चाहे कुछ भी हो, कितनी ही विघ्न-बाधाएं आएं हम इस काम को पूरा करके ही छोड़ेंगे। तो निश्चय ही हम उस कार्य को सफलता से पूरा कर लेंगे।

हमारी समस्त शारीरिक और मानसिक शक्तियों की बागडोर आत्म-विश्वास के हाथ में है। वह स्वयं तो शक्तिशाली है ही, दूसरी शक्तियां भी उसी के पीछे चलती हैं और आत्म-विश्वास के सहारे चौगुना काम करती हैं। जब तक आत्म-विश्वास रूपी सेनापति आगे नहीं बढ़ता, तब तक अन्य सारी शक्तियां हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रहती हैं। ज्योंही आत्म-विश्वास मोर्चे पर डट जाता है, तो अन्य शक्तियां भी उत्साहित होकर उठ खड़ी होती हैं और पूरे ज़ोर से काम करने लगती हैं। परिणाम होता है—विजय और सफलता। आत्म-विश्वास का चमत्कार मानवेतर प्राणियों में भी देखा जाता है। अपनी सफलता में पूरा आत्म-विश्वास रखने वाला घोड़ा ही घुड़दौड़ में विजयी होता है।

सभी लोग किसी न किसी तरह काम करते हैं, पर उनमें सफल मनोरथ बहुत ही थोड़े होते हैं। अधिकांश असफल होकर रह जाते हैं।

इसका कारण यही है कि सफल होने वाले आत्म-विश्वासी और दृढ़-निश्चयी होते हैं तथा असफल होने वाले उत्साह-हीन और असफलता से शंकित। सफल होने वाले में 'कार्यं वा साधेयं, शरीरं वा पातेयम्' अर्थात् 'करो या मरो' की भावना आवश्यक है। यही वह शक्ति है जो कठिनाई आने पर भी मनुष्य को पीछे नहीं हटने देती। दृढ़-निश्चयी मनुष्य पीछे हटना नहीं जानता। वह तो सदा आगे ही बढ़ता है। शंका और सन्देह से भरा मन सफल अभियान का नेतृत्व नहीं कर सकता। सफल और असफल तथा विजयी और पराजित होने के यही कारण हैं। हमें चाहिये कि इन्हें भली प्रकार समझ लें और जीवन से निराशा तथा असफलता को सदा-सदा के लिए दूर भगा दें। सबसे पहले अपने मन को — अपने विचारों और भावों को बदलिए। शब्द और कर्म तो उनके बाहरी रूप मात्र हैं। 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।' महाराजा रणजीत सिंह की बढ़ती हुई सेना अटक नदी के पास जाकर रुक गई। महाराजा रणजीत-सिंह ने रुकने का कारण पूछा तो बोले आगे अटक है। महाराजा रणजीत-सिंह ने कहा,

सबै भूमि गोपाल की, या में अटक कहां।
जा के हृदय अटक है, सोई अटक रहा॥

और अपना घोड़ा बढ़ाकर अटक के पानी में उतार दिया। फिर क्या था! सारी सेना भी उनके पीछे-पीछे नदी में उतर पड़ी और पार हो गई। एक आदमी का आत्म-विश्वास सारी सेना को पार ले गया। यह आत्म-विश्वास का ही चमत्कार था। विजय के इस अभियान में जो आपके शत्रु हैं, उन्हें भली भांति पहचान लेना होगा। नहीं तो धोखा हो सकता है। ये हैं: शंका, झिझक, अनिश्चय, अविश्वास। बस इन पर कभी विश्वास मत कीजिए और और जहां तक हो सके, इनको अपने आस-पास भी मत आने दीजिए। फिर देखिए कि सफलता कैसे आपके चरण चूमती है। आज तक जिसे आप असंभव समझते रहे हैं, वही आप को न केवल संभव अपितु सरल भी लगने लगेगा। आत्म-विश्वास का आश्चर्य-कारी प्रभाव आपके सामने आ जाएगा। यह सर्व सिद्धिदायक कवच है, यह अमोघमंत्र है। इसे हृदय में धारण करने से मनुष्य सारी आपदाओं

से पार पा जाता है। आप जानते हैं कि कुछ लोग ओझाओं से गण्डे-तावीज लेकर गले या बाहु में पहनते हैं। क्या आप समझते हैं कि उनका ये चीजें पहनना बेकार है? जरा विचार कीजिये कि ये कौन लोग हैं। ये वही लोग हैं जो अपना विश्वास खो बैठे हैं और किसी बाहरी शक्ति का सहारा चाहते हैं। गण्डा-तावीज पहन लेने के बाद उन्हें लगता है कि इस जादुई प्रभाव से मेरा कार्य अवश्य सिद्ध होगा। इस प्रकार अपनी सफलता में उन्हें विश्वास हो जाता है। और यही विश्वास सफलता का कारण बनता है। वास्तव में गण्डे-तावीज कार्य-सिद्धि में विश्वास को दृढ़ करते हैं। एक बार कार्य-सिद्धि होने पर उत्साह बढ़ता है, और सभी कार्य सिद्ध होते जाते हैं।

हम जो कार्य-सम्पादन करना चाहते हैं, उसका प्रारम्भ सबसे पहले विचार में होना चाहिये। इच्छित वस्तु के बारे में हमें ठीक-ठीक जानकारी होनी चाहिये और उसे प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प होना चाहिए। इतनी प्रारंभिक तैयारी होने से हमारा मार्ग बहुत कुछ निष्कंटक हो जाता है। यदि हमारा प्रारंभिक विचार ही निर्बल हो तो कार्य की पूर्ति असंभव ही समझनी चाहिये। आज तक संसार में जितने भी महान् कार्य हुए हैं वे प्रबल इच्छा शक्ति और दृढ़ संकल्प शक्ति के ही परिणाम हैं। जरा महात्मा गांधी की कल्पना कीजिए। उन के अनुयायी भारतवासी सदियों की पराधीनता, अशिक्षा और जड़ता के मारे हुए थे। दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्य था, जिसमें सूर्य भी अस्त नहीं होता था। पर राष्ट्र के संकल्प की शक्ति ने वह चमत्कार कर दिखाया कि आने वाली संतानें इस आश्चर्य-जनक तथ्य पर कठिनाई से विश्वास कर सकेंगी। स्वामी रामतीर्थ खाली हाथ अमेरिका की बन्दरगाह पर जाकर उतरे थे। स्वामी विवेकानन्द संन्यासी वेश में जब अमेरिका गए तो वहां के लोग उनका मजाक उड़ाते थे। पर बाद में इन महानुभावों ने जो कुछ करके दिखाया, वह इस बात का प्रमाण है कि कार्य-सिद्धि साधनों की प्रचुरता पर निर्भर नहीं करती। महासत्व वाले पुरुष अपने आत्म-विश्वास से, अपने महिमा-मण्डित व्यक्तित्व से सफल-काम और सफल मनोरथ होते हैं। राम-रावण युद्ध की कल्पना कीजिए। कहां तो वनवासी राम और कहां स्वर्णमयी लंका का

अतुल बलशाली राजा रावण। कहां तो राम की वानर सेना और कहां रावण की राक्षस सेना। रावण अपने घर में, अपनी भूमि पर था और राम समुद्र पार से आए थे। पर अन्त में विजय राम की हुई।

निराशा का कितना ही गहरा अन्धकार हो, आशा-सूर्य के उदय होते ही वह छिन्न-भिन्न हो जाता है। आत्म-विश्वास ही है जो जी-जान से जूझने की शक्ति प्रदान करता है। दुर्बल सत्व के लोग जिन कार्यों को असंभव समझ बैठते हैं, सत्वशाली लोग उन्हें प्रत्यक्ष कर दिखाते हैं। यह सच है कि दृढ़ निश्चयी लोगों के लिए कुछ भी असंभव नहीं होता। यह विचारों और विश्वासों की ही शक्ति है। हमारा मन कल्पवृक्ष के समान है। वह हमें मनचाही वस्तुएं प्रदान कर सकता है, करता है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी चाह कितनी बलवती है। विश्वास की मात्रा और सफलता की मात्रा का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह हमें कभी नहीं भूलना चाहिये।

जो लोग अपने ही पुरुषार्थ से उन्नति करके महान् बने हैं, यदि हम उनके जीवन-चरित्रों को पढ़ें और उनके द्वारा सम्पन्न हुए कार्यों का ठीक से विचार करें तो स्पष्ट रूप से पता लगेगा कि बचपन से ही उनमें प्रबल आत्म-विश्वास रहा है। एडिसन पन्द्रह वर्ष की अवस्था में खाने-पीने की चीजें बेचने के अतिरिक्त एक समाचार पत्र का सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक भी था। गाड़ी में ही उसका प्रेस और प्रयोगशाला भी थी। उसने अपने जीवन-काल में सैकड़ों आविष्कार किये और मानव-जीवन को सुख-सुविधापूर्ण बनाया। महान् कार्य करने वाले व्यक्ति सदा अपनी धुन के पक्के रहे हैं। जब तक कार्य के प्रति एकनिष्ठ एकाग्रता नहीं पैदा होती, तब तक सफलता भी नहीं मिलती। इतने घंटे सोना, इतने बजे खाना और इस तरह के सारे नियम साधारण लोगों के लिए हैं। कर्मठ व्यक्ति दिन-रात में बीस-बीस घंटे काम करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। उन्होंने भोजन और विश्राम की कभी चिन्ता नहीं की। वे अपने लक्ष्य के प्रति सदा जागरूक रहे। वह ध्रुव तारे की तरह सदा उनका मार्ग-दर्शक रहा। और ऐसा समय आया जब लोग आगे बढ़कर उनके मार्ग को प्रशस्त करने लगे।

सफल लोगों के बारे में बातचीत करते समय प्रायः लोग मूल कारण को भूल कर सतही बातों की चर्चा करते देखे जाते हैं। वे कहते हैं; उनका भाग्य अच्छा है, उनके सम्बन्धी बड़े-बड़े पदों पर बैठे हुए हैं, उनकी पहुंच ऊंचे अधिकारियों तक है। ये सब छिछली बातें हैं। इनकी चर्चा व्यर्थ है। मूल कारण को खोज निकालिये। आपको पता चलेगा कि निश्चय ही इन व्यक्तियों में कुछ ऐसे आधार भूत गुण मौजूद हैं, जो उनकी सफलता का कारण हैं।

हमारा अपनी सफलता में विश्वास अधूरा या अधकचरा नहीं होना चाहिये। उसमें कहीं दरार नहीं होनी चाहिये। छिद्र नहीं होना चाहिये। अर्थात् सफलता के बारे में तिल मात्र भी सन्देह नहीं होना चाहिये। इसको यों समझिये कि सफलता में सन्देह का अर्थ है, प्रयत्न में शिथिलता। और प्रयत्न में शिथिलता आएगी तो सफलता स्वयं भागेगी। दृढ़ विश्वास ही सफलता की जान और कुंजी है। जितनी कठोर धातु होती है, उसे गलाने के लिए उतने ही भीषण तापमान की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार जितना कठिन और बड़ा कार्य होगा, उसके लिये उतने ही दृढ़ आत्म-विश्वास और निरन्तर प्रयत्न की आवश्यकता होगी। जिस काम को करते समय हम अपनी समस्त शक्तियों को उसमें नहीं लगा पाते, मन को एकाग्र नहीं कर पाते वह कभी पूरा नहीं होता। संसार में इसीलिए साधारण लोगों की संख्या अधिक है कि वे अपने को संयमित और एकाग्र नहीं कर पाते। उनका निश्चय और प्रयत्न दोनों शिथिल होते हैं।

सफलता के लिए ऐसे निश्चय की आवश्यकता होती है, जो कभी कर्त्तव्य-विमुख नहीं होता और पराजित होना नहीं जानता। ऐसा निश्चय ही उन्नति के शिखर पर पहुंचाने में समर्थ होता है। बहुत से लोग दूसरों की सहायता रुपए-पैसे से करते हैं। पर यदि किसी की सच्ची सहायता करनी हो तो उसके सोए हुए आत्म-विश्वास को जगा देना चाहिये। उसके अभाव में रुपया-पैसा कुछ भी नहीं कर सकेगा। रामायण की उस घटना का स्मरण कीजिए जब हनुमान, जाम्बवान् आदि सुग्रीव के लोग समुद्र तट पर बैठे थे। समस्या थी कि समुद्र को कैसे पार किया

जाए। हनुमान इस कार्य को कर सकते थे पर उन्हें अपनी शक्ति का पूरा ज्ञान नहीं था। उस सोई हुई शक्ति को जगाकर जाम्बवान् ने हनुमान में आत्म-विश्वास की प्रतिष्ठा कर दी। परिणाम आप जानते हैं।

इस बात को सदा के लिए भूल जाना चाहिये कि काम भाग्य या संयोग से सिद्ध होते हैं। यह सरासर झूठ है। यह निकम्मे लोगों की भाषा है। यह विचार आगे ले जाने वाला नहीं है। संयोगों की सृष्टि करने वाला परमात्मा न्यायकारी कैसे हो सकता है। भाग्य के विधाता हम स्वयं हैं। संयोग, संकल्प और अध्यवसाय का हो सकता है। 'दैव-दैव आलसी पुकारा' की बात सच है। यदि क्षण भर के लिए मान भी लिया जाए की भाग्य और संयोग नाम की सत्ताएं हैं तो भी उन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। हम उन्हें प्रयत्न पूर्वक उत्पन्न नहीं कर सकते। फिर जो चीज हमारे वश की है ही नहीं, उसके बारे में हम सोचें ही क्यों! हमारे विचार-क्षेत्र में तो दृढ़ निश्चय और सतत अध्यवसाय ही आते हैं। ईश्वरीय सत्ता भी उन्हीं की सहायता करती है, जो स्वयं प्रयत्नशील होते हैं।

'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्' शिव की पूजा करनी है, तो स्वयं भी शिव बनना होगा। सफलता चाहिये तो सफल व्यक्तियों की ओर देखिए। उनके कार्यों को देखिये। अपने आचरण-व्यवहार को एक सफल व्यक्ति जैसा बनाइये। सफल व्यक्तियों का संग कीजिए। यदि नीचे की ओर ही देखते रहे तो ऊपर कैसे उठेंगे। अपने मन-मस्तिष्क को उदग्र कीजिए। क्षुद्र भावनाओं को बाहर निकाल दीजिए। जो लोग रोनी-सी सूरत बनाए सदा निराशा और दुःख की ही बातें करते रहते हैं, उससे जरा दूर ही रहिये। जैसे रोगों के सूक्ष्म कीटाणु होते हैं, इसा प्रकार आशा-निराशा जैसे भावों की भी सूक्ष्म तरंगें होती हैं और वे छूत की तरह एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। जो भाव-तरंगें सबल होंगी, वे निर्बल भाव तरंगों को परास्त कर अपना प्रभाव दिखाएंगी।

जिस कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगाया था, वह आत्म-विश्वास का अवतार ही था। स्पेन के राज्याधिकारी उसकी खिल्ली उड़ाते थे। वे उसे सनकी और पगला समझते थे। यदि वह उन लोगों की बातों पर

ध्यान देता तो यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि फिर अमेरिका का पता लगाने वाला कोलम्बस नहीं, कोई दूसरा ही होता। पर कोलम्बस साहस और संकल्प का धनी था। उसे दृढ़ आत्म-विश्वास था कि मैं जो कुछ कह रहा हूं वह सत्य है। और मैं उसे पूरा कर दिखाऊंगा। वह एक छोटे जहाज पर खाने-पीने की सामग्री लेकर चल पड़ा। साथी मल्लाहों ने उसका बहुत विरोध किया। वे आधे रास्ते से वापस घर लौट आना चाहते थे। पर कोलम्बस ने न केवल उनकी बात नहीं मानी, उनसे अपनी बात मनवा ली। वह जिस काम के लिए घर से निकला था, उसे पूरा किये बिना वह कैसे लौट आता। मल्लाहों ने उसे समुद्र में फेंक देने तक की धमकी भी दी पर वह था कि तिल भर भी नहीं झुका। उसके आत्म-विश्वास और दृढ़ निश्चय का ही यह फल था कि वह तब तक अज्ञात, अमेरिका देश को खोज पाने में समर्थ हुआ।

इतिहास का अध्ययन करने पर इस प्रकार के अनेक महापुरुष और घटनाएं मिल जाएंगी जब बहुतों के विरोध में किसी एक आत्म-विश्वासी आदमी ने अडिग रहकर असंभव समझे जाने वाले कार्यों को कर दिखाया है। उन्होंने अपने कार्यों से सिद्ध कर दिया कि दृढ़ निश्चय, सतत् परिश्रम और आत्म-विश्वास के सामने कुछ भी असंभव नहीं है। सारे इतिहास को छान डालिये, आपको ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलेगा कि उपर्युक्त गुणों के अभाव में कोई महान् कार्य सम्पन्न हुआ हो। धर्मप्रवर्तकों, शूरवीरों, अविष्कारकों और महापुरुषों के जीवन इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं कि उन्होंने आत्म-विश्वास के बल पर क्या कुछ नहीं कर दिखाया। यह संभव ही नहीं है कि उपर्युक्त गुणों के अभाव में किसी महत्त्वपूर्ण कार्य की कल्पना की जा सके। ये गुण बड़प्पन के बीज हैं। विजय के सूत्रधार हैं। शक्ति-सामर्थ्य की कमी का भय तो तभी तक रहता है, जब तक हम इसका सम्बन्ध परम शक्तिशाली परमेश्वर से नहीं जोड़ते। छोटी-छोटी बैटरियां जल्दी समाप्त हो जाती हैं। पर जिस बत्ती का सम्बन्ध पावर हाउस से हो, उसके बुझने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए परम सत्ता में निष्ठा रखते हुए अपने विचारों को प्रशस्त करें। दृष्टि का विस्तार करें। क्षुद्र स्वार्थों से अपने को दूर रखें तो हमारे व्यक्ति-

त्वों में सद्गुणों का समावेश अनायास ही हो सकता है। हम गुणी होकर सम्मान, गौरव और सत्कार के पात्र बन सकते हैं।

मनुष्य की बुरी दशा का यदि कोई मात्र कारण है या हो सकता है तो वह है अपना ठीक-ठीक महत्व न समझना, अपनी वास्तविकता को न पहचानना और अपने आपको स्वयं अपनी नजरों में गिरा देना। अपने आपको अयोग्य समझने से बढ़कर मूर्खतापूर्ण विचार दूसरा नहीं हो सकता। गीता में लिखा है, 'नात्मानमवसादयेत्'। (आत्मा का अपमान न करे) क्योंकि आप अपने को जो कुछ समझते हैं, वैसे ही बन जाएंगे और फिर कोई भी शक्ति आपको उससे भिन्न नहीं बना सकती। अगर आप अपने को तुच्छ समझते हैं तो दूसरे भी इससे अधिक नहीं समझेंगे।

इसलिए आत्म-विश्वास की मशाल लेकर चलिए, आगे बढ़िए। शेष सारी शक्तियां पीछे चल पड़ेंगी। आप चारों ओर घेरे मत बनाइये, क्षुद्र सीमाओं में अपने को मत बांधिये। आप अनन्त सत्ता के प्रतिनिधि हैं। स्वयं को पहचानिये और संसार में अपना उचित स्थान प्राप्त कीजिये।

अपने को स्वप्नदर्शी बनाइये। फिर अपने अध्यवसाय से स्वप्नों को साकार करके दिखाइये। मनुष्य जब तक कुछ कल्पना न करे और कल्पना को कार्य रूप में परिणत करने के लिए अपनी योग्यता और बल पर पूरा-पूरा विश्वास न करे तब तक वह आगे बढ़ ही नहीं सकता। सर्वप्रथम उच्चाकांक्षा होना ही योग्यता का बहुत बड़ा प्रमाण है। और आकांक्षा को पूरा करने के लिए दृढ़ संकल्प और प्रयत्न का योग हो जाने पर तो किसी बात की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। जिस परमात्मा ने हममें उच्चाकांक्षाएं उत्पन्न की हैं, उसने उन की पूर्ति के साधन भी हमें दिए हैं—वे भी हमारे भीतर ही हैं। उसने हमें व्यर्थ भटकने के लिए नहीं सिरजा है। किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही हमें पैदा किया गया है। उक्त तथ्य को हमें भूलना नहीं चाहिये।

हमारे जीवन में जितनी घटनाएं होती हैं अथवा जितने कार्य होते हैं, उन सबका कारण स्वयं हमारे भीतर विद्यमान रहता है। हम जिस बात की कल्पना करते हैं और जिसके लिए प्रयत्न करते हैं, वही काम हमसे होता है। यदि हम किसी को किसी विशेष क्षेत्र में बड़ी सफलता

प्राप्त करते हुए देखें तो हमें जान लेना चाहिये कि उस व्यक्ति ने अपनी सफलता की कल्पना की है, उसके लिए प्रयत्न किया है। वह स्वयं को इसके सर्वथा योग्य समझता है।

इसलिए अपने पर विश्वास रखिये। अपनी शक्ति को ठीक-ठीक पहचानिये और उससे काम लीजिए। आप स्वयं ही अपने भाग्य के विधाता और निर्माता हैं। आपके भीतर एक अपूर्व अलौकिक शक्ति सुप्त अवस्था में पड़ी हुई है उसे प्रयत्नपूर्वक जगाइये, उससे काम लेना सीखिये। जिस दिन आप इस बात को अच्छी तरह समझ लेंगे, उस दिन आपका जीवन अनन्त शक्ति का भण्डार बन जाएगा। सुख और सफलता की यही कुंजी है। यही वह शक्ति है जो भिखारी को भगवान् और नर को नारायण बना देती है। कितने ही लोग लोहे से सोना बनाने की विधि सीखने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। कुछ ने तरह-तरह के रासायनिक प्रयोगों द्वारा ऐसा करने का प्रयत्न किया है और कुछ ने साधु-सन्तों की सेवा करके इस गुप्त रहस्य को जानने का प्रयास किया है। पर वे असफल रहे हैं। काश कि वे जान पाते कि आत्म-विश्वास और सतत् अध्यवसाय द्वारा वे मिट्टी को सोने में बदल सकते थे। वह शक्ति उनके पास आ सकती थी, जिसके द्वारा मिट्टी भी छूने पर सोना बन सकती है। परमहंस रामकृष्ण जी के पास एक व्यक्ति गया और कहने लगा कि मुझे ईश्वर के दर्शन करा दीजिए : उन्होंने कहा कि मैं ईश्वर के दर्शन तो तुम्हें नहीं करा सकता पर यदि चाहो तो तुम्हें ईश्वर बना सकता हूं। इस बात की गहराई को समझिये। यह तो आप अनेक बार पढ़-सुन चुके हैं कि ईश्वर कहीं बाहर नहीं है, हमारे भीतर ही है। तो बस फिर इस ईश्वर का साक्षात्कार कीजिये। 'ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति' अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। इसलिए पुजारी नहीं, स्वयं को भगवान् बनाइये।

योग में, योगी पुरुष अपने भीतर सुप्त 'कुण्डलिनी' शक्ति को जगाते हैं। और जब यह शक्ति पूरी तरह जाग जाती है तो योगी के लिए कुछ करना असंभव नहीं रह जाता। आप भी योगी बनिये। गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है : 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात् कर्म में कुशलता प्राप्त

करना ही योग है। आप भी सोई हुई शक्ति को जगाइये। फिर देखिये कि आप के भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाश हो जाएगा और आपके मार्ग की सारी विघ्न-बाधाएं दूर हो जाएंगी। फिर आप आगे, और आगे बढ़ते जाएंगे। इस राजमार्ग पर चलने वाला पथिक कभी कष्ट नहीं पाता। उसके आगे से पहाड़ भी हट जाते हैं, सागर भी उसके लिए मार्ग दे देते हैं। नेपोलियन के इस कथन मात्र से कि आल्पस है ही नहीं, आल्पस की सत्ता को उसके सैनिकों ने नकार दिया था।

विश्वास कभी धोखा नहीं देता। उसका प्रभाव जादुई है। बंधन, बाधाएं और सीमाएं वह नहीं मानता। उन्नति करने और बढ़ने के लिए यह अचूक उपाय है। सिद्ध औषधि है। उसके होते आपको गण्डे-तावीज बांधने की आवश्यकता नहीं। सचमुच कोई सर्वार्थ सिद्धि मंत्र, यंत्र या तंत्र है तो यही आत्म-विश्वास। उसको पहचानिये, उसी को जानिये और उसी को मानिये। उसी का चिन्तन-मनन कीजिये। आप पूर्ण-काम हो जाएंगे। सफल मनोरथ हो जाएंगे। कल्प वृक्ष और कामधेनु वही है। निश्चय जानिये एकमात्र वही है। वही सत्य, शिव और सुन्दर है। उसकी उपासना के अतिरिक्त परमानन्द—परम, सुख प्राप्त करने का और कोई मार्ग नहीं है।

नान्यः पन्थः विद्यते।

१२

दृढ़ निश्चय

श्रेष्ठ पुरुष प्रारंभ किए हुए कार्य को बीच में नहीं छोड़ते।
—भर्तृहरि

हम जो काम करना चाहते हैं, उसे सफलतापूर्वक पूरा करने में हमारा दृढ़ निश्चय भी बहुत बड़ा सहायक होता है। किसी कार्य को करने के सम्बन्ध में हमारा निश्चय जितना ही अधिक दृढ़ होता है, उसमें सफलता भी उतनी ही अधिक मिलती है। हमें जो कुछ करना हो, वह बहुत ही दृढ़ता और तत्परता के साथ करना चाहिये। तोप के गोले को लोहे की किसी मोटी चादर में धीरे-धीरे धंसाने का प्रयत्न कभी भी सफल नहीं हो सकता। सफलता तभी मिलेगी, जब गोला बड़ी तेजी से और जोरदार तरीके से फेंका जाएगा। ठीक यही दशा हमारे काम की भी होती है। 'क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम्' अर्थात् जो कार्य शीघ्रता से नहीं किया जाता है, समय उसके रस को पी जाता है।

प्रायः लोग कहते सुने जाते हैं: 'देखिये यदि ईश्वर ने चाहा तो,' 'यदि हमारे भाग्य में हुआ तो', 'यदि हो सका तो'। पर वे यह नहीं जानते कि उनके कथन में लगा हुआ 'यदि' उनकी नम्रता या ईश्वर-विश्वास का सूचक न होकर उनके मन में, सफलता के सम्बन्ध में उनके सन्देह का ही सूचक है। इससे उनकी दृढ़ता में कमी का पता लगता है, उनके कमजोर मन और संकल्प का सूचक है। इसके विपरीत यदि कोई दुर्बल संकल्प का आदमी भी किसी विशेष अवसर पर कोई बात दृढ़तापूर्वक कह बैठे तो

इससे उसमें नए उत्साह और बल का संचार होगा। और यह उत्साह और बल उसे कार्य सिद्धि की ओर अग्रसर करेगा।

सफलता चाहने वाले मनुष्य को कभी भी कोई बात इस प्रकार की भाषा में नहीं कहनी चाहिये, जिससे किसी प्रकार का सन्देह या अनिश्चय सूचित होता हो। कभी भी यह मत कहिये कि हम कभी न कभी सफल होंगे। यह ढीली-ढीली भाषा ढीले-ढीले व्यक्तित्व की सूचक है। पूरी स्पष्टता और दृढ़ता से कहिये कि हम सफल होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अपनी सफलता—सुख और प्रसन्नता की नींव दृढ़ आत्म-विश्वास और संकल्प ही है। यही वह नींव है, जिसपर सफलता के भवन का निर्माण होना है।

हम जो कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, उसपर हमें अपना पूरा-पूरा अधिकार समझना चाहिये। हमें चाहिये कि वह चीज हमारे लिए ही बनी है और उसे प्राप्त करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इस तरह दृढ़ विचार से अलौकिक बल का संचार होगा जो कि कार्य-सिद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस सृष्टि की रचना सत्य और न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित है, सौन्दर्य और शक्ति ईश्वरीय अंश से उत्पन्न हैं। हमें इनकी प्रतिष्ठा अपने में माननी और करनी चाहिये। एक बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि ईश्वरीय शक्तियां हमारी सहायक तभी होंगी, जब हम ईश्वरीय नियमों का निष्ठा-पूर्वक पालन करेंगे।

इस बात को कभी मत भूलिये कि हम वही कुछ बनते हैं, जो कुछ अपने बारे में सोचते हैं। इसके अतिरिक्त हम कुछ बन नहीं सकते, कभी कुछ बनते नहीं। जो धन-उपार्जन करने को अपना जीवन-लक्ष्य बना लेते हैं, वे कभी भी कवि या चित्रकार नहीं बनते। वे धन के ही बारे में सोचते हैं और धनोपार्जन होगा ही, इस बारे में आश्वस्त रहते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख होना चाहिये। लक्ष्य-प्राप्ति के बारे में उसका विचार और विश्वास सुदृढ़ होना चाहिये।

दृढ़ निश्चय का उद्देश्य-सिद्धि पर जो शुभ प्रभाव पड़ता है, लोग उससे परिचित नहीं हैं। परन्तु जो लोग जानते हैं, उन्होंने अनुभव किया है कि

यह अचूक अस्त्र है और भीतर की सोई हुई शक्तियों को जाग्रत करने का अमोघ उपाय है।

यद्यपि हम जो निश्चय करेंगे वह सर्वप्रथम मन में ही करेंगे किन्तु बाद में उसे लोगों में प्रकट भी कर देना चाहिए। हमें उस निश्चय को स्पष्ट शब्दों में दूसरों से कहना चाहिये। यह इसलिए आवश्यक है कि मन में दिन-रात में हजारों संकल्प-विकल्प उठते हैं। उनमें से कुछ के बारे में तो हम तात्कालिक रूप में कुछ निश्चय भी मन ही मन कर लेते हैं। परन्तु इनमें से अनेक निश्चय मन में ही होकर रह जाते हैं। जब हम अपने निश्चय को अपनी वाणी से बोलकर, अपने ही कानों से सुनते हैं तो वह निश्चय दूसरे मानसिक निश्चयों की भीड़ से अलग हो जाता और महत्त्वपूर्ण निश्चय बन जाता है। और जब हम दूसरों के सामने भी अपने निश्चय को प्रकट कर देते हैं तब तो अन्य लोग भी उसके साक्षी हो जाते हैं। ये लोग निश्चय पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रहने में हमारे सहायक भी होते हैं। वे हमसे पूछ सकते हैं कि आपने जो अमुक निश्चय किया था, उसका क्या हुआ? लोगों का मन प्रायः दुर्बल हुआ करता है और वह एकाग्र होकर कोई दृढ़ निश्चय नहीं कर पाता। ऐसे मन का निश्चय प्रायः अस्थिर रहता है। पर वाणी का रूप मिलते ही उसका प्रभाव बढ़ जाता है। आप जानते हैं, कि उच्चारण किए गए शब्द कभी नष्ट नहीं होते और वे वायु मण्डल में व्याप्त हो जाते हैं। शब्द-तरंगों में चमत्कारिक प्रभाव होता है और वे समान-विचार वाले अनेक हृदयों को तरंगायित करती हैं।

यह बात अनुभव-सिद्ध है कि साधारणतया हम जिन बातों को मन में सोचते हैं, उनका हमपर कोई स्थायी प्रभाव नहीं होता। पर जब उन्हीं बातों को हम किसी पुस्तक में पढ़ते हैं या किसी से सुनते हैं तो उनका हम पर अधिक स्थायी प्रभाव पड़ता है। अनदेखे पहाड़, समुद्र आदि स्थानों के चित्र देखकर हम पर वैसा प्रभाव कभी नहीं पड़ सकता जैसा उन्हें प्रत्यक्ष देखकर पड़ता है। निश्चय को शब्दों में प्रकट करने से एक स्पष्टता और साकारता आ जाती है। इसलिए आवश्यक है कि दिन-रात अनेक सोची हुई बातों में हम उस बात को अलग कर लें जिसे हम

महत्त्वपूर्ण समझते हैं। इसका उपाय है, उसे शब्दों में कहना और सुनना, दूसरों से उसे प्रकट करना। आप इस विधि को अपनाकर देख सकते हैं। तब आप इसके महत्त्व को सहज ही जान जाएंगे।

इस उपाय से हम अपने दोषों और त्रुटियों का निराकरण भी कर सकते हैं। सम्मोहन विद्या में आत्म-निर्देशन से जो लाभ होता है, वही लाभ इस प्रकार के आत्म-निर्देशन से भी होता है। सम्मोहन विद्या में दूसरा व्यक्ति निर्देशन करता है, इस विधि में स्वयं ही सब कुछ करना पड़ता है। इस प्रकार के स्वगत कथन का वही परिणाम होता है जो किसी अच्छे मित्र या महात्मा के उपदेश का होता है। इस विधि का दोहरा उपयोग किया जा सकता है। कामनाओं की पूर्ति के लिए और दोषों को दूर करने के लिए। यह आत्मोन्नति का सरल और सुन्दर उपाय है।

एकांत में जाकर अपने उद्देश्य के सभी पक्षों और विपक्षों पर विचार करके स्वगत कथन द्वारा आत्म-निर्देशन करना चाहिये। हम अपने कर्त्तव्य के बारे में जो निश्चय करें उसे अपनी वाणी से कहकर अपने कानों को सुनाना चाहिये। हमें कहना चाहिये कि हम भविष्य में यह करेंगे और वह नहीं करेंगे।

मान लीजिए किसी व्यक्ति के स्वभाव में चिड़चिड़ापन है। इस चिड़-चिड़ेपन के कारण उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति अप्रसन्न हो जाते हैं और उसकी कार्य-सिद्धि में विघ्न उपस्थित होता है। इस व्यक्ति को चाहिये कि एकान्त स्थान में जाकर अपने इस दोष पर विचार करे। यह सोचे कि इस दोष के कारण मेरी कितनी हानि हुई है। तब फिर उसे अपने आपसे कहना चाहिये कि 'मैं अच्छी तरह समझ गया हूं कि यह चिड़चिड़ापन ही मेरे कामों को बिगाड़ता है। मैं इसको दूर करके रहूंगा।' यदि कोई व्यक्ति चरित्र-भ्रष्ट हो तो उसे अपने आपसे कहना चाहिये कि मेरे शरीर और मेरी आत्मा का इस अनाचार के कारण बहुत बुरी तरह नाश हो रहा है। इससे मेरे साथ-साथ मेरे परिवार के लोग भी दुखी हैं। इससे मैं एक बुरा उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूं। मैं आज से शपथ लेता हूं कि मैं भविष्य में कभी भी बुरे कार्य नहीं करूंगा। मैं अपने आपको ऊपर उठाऊंगा और सबके सामने अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करूंगा। मैं अपनी

मानसिक दुर्बलता को दूर करके रहूंगा। मैंने जो आज एक अच्छा संकल्प किया है, इसे पूरी तरह निभाऊंगा।

हमें सदा जागरूक रहकर आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिये। जिस प्रकार एक किसान अपने खेत में उत्पन्न होने वाले खर-पतवार को बार-बार उखाड़ फेंकता है और पौधों को पोषण देने के लिए उनके मूल के पास मिट्टी और खाद जमा करता है, वैसे ही अपने दुर्गुणों को उखाड़ फेंकना चाहिये और सद्गुणों को पुष्ट करना चाहिये। यह बड़ा ही प्रभावशाली मनोवैज्ञानिक उपाय है, जो मन को दृढ़ बनाकर बड़े-बड़े प्रलोभनों के सामने भी टिके रहने में समर्थ बनाता है।

हमें आत्मा के सत्, चित् और आनन्द स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। हमें यह भी पता होना चाहिये कि हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं। हम अपने को जैसा बनाना चाहें बना सकते हैं। हम इन्द्रियों के दास नहीं, स्वामी हैं। मन और इन्द्रियां वही कार्य करेंगी, जिसे हम करवाना चाहेंगे। वे शुद्ध बुद्धि के अनुशासन में रहकर ही कार्य करेंगे।

यद्यपि ऊपर से देखने पर यह बात बड़ी हास्यास्पद लगती है कि कोई एकांत में स्वयं ही कहे और स्वयं ही सुने। किन्तु इस विधि की शक्ति अमोघ है। इससे अपने समस्त दोषों और त्रुटियों को दूर किया जा सकता है। जब कोई व्यक्ति इस विधि के अनुसार आत्म-निर्देशन कर रहा हो, उस समय उसे मन में यह विचार नहीं लाना चाहिये कि लोग मुझे इस तरह करते देखकर हंसते होंगे। उसे अपने को कभी भी हीन दृष्टि से न देखकर आत्म-सम्मान की दृष्टि से ही देखना चाहिये। गीता में लिखा है, 'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।' अर्थात् आत्मा ही आत्मा का बन्धु और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। इसलिए सदा आत्मगौरव की भावना को जाग्रत-विकसित करना चाहिये।

आलस्य को अपना शत्रु मानते हुए, अनिश्चय को, सन्देह को, अपने मन से बल पूर्वक बाहर निकाल फेंकिये और इनके स्थान पर दृढ़ विश्वास और अध्यवसाय को अपनाकर देखिए। कुछ न करने से कुछ करना अधिक अच्छा है! कार्य करते समय भूल भी हो सकती है। इसमें घबराने की क्या बात है। जो कुछ भी काम नहीं करेगा, उससे भूल क्या होगी।

भूल तो काम करने वालों से ही होती है। भूलों से यदि शिक्षा ग्रहण की जाए तो वे भी हमें कार्य-सिद्धि की ओर ले जाती हैं। अपनी योग्यता को कम मत समझिये। अपने को छोटा मत बनाइये। भर्तृहरि ने लिखा है : नीच पुरुष विघ्न के भय से कार्य को शुरू ही नहीं करते हैं, और मध्यम कोटि के लोग काम तो शुरू कर देते हैं पर ज्यों ही कोई विघ्न-बाधा सामने आती है, छोड़ बैठते हैं। किन्तु श्रेष्ठ पुरुष बार-बार विघ्न पड़ने पर भी प्रारंभ किये गए काम को बीच में नहीं छोड़ते।'

आज लोगों की स्थिति उस मनुष्य जैसी हो रही है जो अमृत के निर्झर के पास होते हुए भी प्यासा हो। ईश्वर ने हमें एक ऐसी खान का स्वामी बनाया है जिसमें सब प्रकार के रत्न छिपे हुए हैं। आवश्यकता उन्हें खोदकर निकालने की है। हम सब कल्प वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। कल्प वृक्ष से जो कुछ मांगेंगे, वही हमें मिलेगा। हमारा मन ही कल्प वृक्ष है। इसकी शक्ति अपार है। इस पर जो अधिकार करना जानता है, वही इसकी शक्ति का स्वामी बनता है। अधिकार स्वामियों का होता है, दासों का नहीं। हम स्वामी बनें—अपनी इन्द्रियों के और मन के। यह मन पर सात्त्विक बुद्धि का शासन रहने से ही संभव हो सकता है। आत्म-संयम, दृढ़ निश्चय से ही मन वश में होता है।

पांवों में कांटे न चुभें इसके लिए सारी धरती के कांटों का नाश करने कोई नहीं निकलता; न ही धरती पर चमड़ा बिछा दिया जाता है। अपने पैर में जूता पहन लेने से ही सारी समस्या हल हो जाती है। इस लिए अपने को पहचानिए, अपने को सुधारिए, यही एकमात्र मार्ग है। यही वह मार्ग है, जिसपर चलकर सुख तथा सफलता की प्राप्ति हो सकती है।

१३

आत्मा की आवाज : मानसिक सूचना

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः।
(मैं सबके हृदय में बैठा हुआ हूं।) —गीता

जो लोग अपराधी होते हैं, वे शरीर से अपराध करने से पहले, अपने मन से अपराध करते हैं। पहले वे अपने मन में उस अपराध की बार-बार कल्पना करके उसकी समस्त रूप-रेखा बनाते हैं। उसके सभी पक्षों पर विचार करते हैं। शारीरिक तौर पर अपराध करने से पहले मन में वे उसका पूरा अभ्यास कर लेते हैं। यह बात केवल अपराध के ही सम्बन्ध में सत्य नहीं है, हमारे सभी कार्य-कलाप पहले मन में जन्म लेते हैं।

न्यूयार्क में एक बदनाम अपराधी था। उसने अपना पच्चीस वर्ष का जीवन विभिन्न जेलों में कैद रहकर बिताया था। पूछने पर उसने बताया था कि मैंने स्वप्न में भी अपने अपराधी बनने की बात नहीं सोची थी। परन्तु बचपन से ही मेरी प्रवृत्ति ऐसे कामों की ओर थी, जो दूसरों को असंभव लगते थे। जब मैं किसी बहुत बड़े आदमी के भवन में जाता था, तो मेरे मन में विचार आता कि मैं किसी प्रकार रात के समय इस भवन में घुस जाऊं और कोई मुझे देख न सके। बार-बार यह विचार मन में उत्पन्न होने पर, मैंने इसे कार्य-रूप में परिणत करने का निश्चय किया। मैं एक बड़े आदमी के मकान में रात को जा पहुंचा और बड़े अभिमान के साथ प्रत्येक कमरे में घूमने लगा। घर के सब लोग गहरी नींद में सोए पड़े थे। मैं इस कार्य में बड़ा गर्व अनुभव कर रहा था कि मैंने कितने

साहस का काम किया है। मुझे किसी ने नहीं देखा। मैं जैसे मकान में घुसा था, वैसे ही निकल आया। इस सफलता से मेरा साहस बढ़ गया और मैं मकानों में रात को घुसने लगा। जब भी मैं मकान से बाहर निकलता था तो समझता था कि मैं कोई बड़ा बहादुरी का काम करके आ रहा हूं। मैं यों ही मकानों से कुछ चीजें भी उठा लाता था। पर इस का कारण यह नहीं होता था कि वे चीजें बड़ी कीमती होती थीं, अपितु यही सोचकर कि मैं कितने बड़े खतरे का काम कर रहा हूं। मेरे मन में कभी भी यह बात नहीं आती थी कि मैं कोई अनुचित कार्य कर रहा हूं और चोर समझा जाऊंगा। धीरे-धीरे मुझे ऐसे काम करने की आदत पड़ गई। जब मैं पहली बार पकड़ा गया तो भी मैंने यह नहीं सोचा था कि मैं बड़ा अपराधी बन जाऊंगा। परन्तु मैं प्रमुख अपराधी बन गया और जीवन के सुनहरे वर्ष मुझे जेलों की सीखचों में बिताने पड़े।

इस सत्य घटना से स्पष्ट ज्ञात होता है कि मन में कोई बुरी कल्पना करना कितना अधिक भयंकर और घातक हो सकता है। बुरे विचार जब एक बार मन में बैठ जाते हैं तो उन्हें बाहर निकालना कठिन हो जाता है। और वे विचार बड़ी तेजी से अपने को आदत के रूप में बदल लेते हैं। तब उनसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। पहले-पहल हम प्रायः सोचते हैं कि एक बार यह काम कर देखें। एक बार सिगरेट पीकर तो देखें, एक बार एक घूंट शराब चख कर देखें। और यह पहली भूल ही हमारे सर्वनाश का कारण बनती है।

बड़े-बड़े चोरों से पूछ-ताछ करने पर पता चलता है कि वे वास्तविक चोरी करने से वर्षों पहले चोरी करने के विभिन्न उपायों के बारे में सोचा करते थे। मकान के भीतर घुसने के और पकड़े न जाने के अचूक उपाय वे सोचा करते थे। यही विचार एक दिन कार्य रूप में परिणत हो गए और वे पक्के चोर बन गए। फिर तो कभी-कभी चोरी करना छोड़ देने का विचार मन में आने पर भी वे चोरी करना छोड़ नहीं सके। और चोरी और सजा, फिर चोरी और फिर सजा, यही उनके जीवन का क्रम बन गया। चोर चोरी करता है और पकड़ा जाता है। वह सोचता है कि अबकी बार मैं अपनी एक भूल के कारण पकड़ा गया। अब छूटकर जब

चोरी करूंगा, तो कोई भूल नहीं करूंगा और साफ बच जाऊंगा। चोरी के माल से मालामाल होकर सुख-चैन का जीवन बिताऊंगा। जुआरी भी इससे मिलते-जुलते ढंग से सोचता है। वह खेलता है और हारता है। जीतता है और फिर हार जाता है। वह भी सोचता है कि घर, जमीन-जायदाद या गहने-गट्ठे बेचकर अबकी ऐसा दांव खेलूंगा कि अगली-पिछली सारी कसर पूरी हो जाएगी। पर होता क्या है! वह फिर हार जाता है। उसका और सारे परिवार का जीवन नरक के समान बन जाता है। पर विचित्र बात यह है कि फिर भी जब कभी कुछ रुपए उसके हाथ में आते हैं तो जुए के अड्डे की ओर चल देता है। सटोरिये भी यही करते हैं। चोर, जुआरी और सटोरिये—ये सब वे लोग हैं जो एक दिन में मालामाल हो जाना चाहते हैं। बिना कमाए, बिना सतत परिश्रम किए लखपति बनने की कामना करने वाले ये लोग परिवार और समाज की घृणा के पात्र बने फटे हाल अपने जीवन का बोझ उठाए घूमते-फिरते हैं।

कई बार दूसरों के दूषित विचारों से भी कुछ लोग अपराधी बनते देखे जाते हैं। यदि किसी साधारण नौकर को उसका मालिक हर घड़ी सन्देह की नजर से देखे और उसे चोर समझने लगे तो इस बात की पूरी संभावना है कि वह नौकर एक दिन चोर बन जाए। इसके विपरीत यह भी देखा है कि किसी चोर-उचक्के पर विश्वास करके कोई जिम्मेदारी सौंप दी जाती है तो वह भरसक अपने को विश्वस्त सिद्ध करता है। इस लिए जब तक हमें किसी के चोर या बेईमान होने का कोई प्रमाण न मिल जाए तब तक किसी पर सन्देह नहीं करना चाहिये। होता यह है कि जब कोई किसी से सन्देहपूर्ण व्यवहार करता है और उसका तिलभर भी विश्वास नहीं करता तो वह व्यक्ति मन में सोचता है, यह मुझे चोर या बेईमान समझता है। इस प्रकार प्रत्येक सन्देह और शंका के अवसर पर चोरी और बेईमानी का विचार उसके मन में उठेगा और यही विचार जड़ पकड़ लेता है। जब तक हमें किसी व्यक्ति के चोर या बेईमान होने का प्रमाण न मिल जाए, तब तक उस पर सन्देह नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का मन एक पवित्र क्षेत्र है। उसमें किसी दूषित विचार का बीज हमें कदापि नहीं बोना चाहिये। जिस प्रकार हम अपने मन में कोई

दूषित विचार नहीं लाना चाहते इसी प्रकार किसी दूसरे के मन में भी हमें कोई दूषित भाव या विचार नहीं उत्पन्न करना चाहिये।

बहुत से लोग अनजाने में या जानबूझकर दूसरों में शंका, भय, विफलता, असत्यता आदि अनेक प्रकार के दूषित भावों का बीजारोपण करते हैं। ये दूषित विचार लोगों के मन में जड़ पकड़ लेते हैं और समय पाकर बुरा फल देते हैं। इस तरह जिनमें दूषित भावों का आरोपण किया जाता है, वे प्रसन्न-विश्वस्त के बदले चिन्तित-शंकित, निर्भय के विपरीत भयभीत, सफल के विपरीत विफल और सत्याचरण के विपरीत असत्याचरण करने वाले बन जाते हैं। इसलिए हमें किसी भी व्यक्ति में भावों का आरोपण करने में सावधान रहना चाहिये।

प्राय: देखा जाता है कि कोई किशोर किसी कारण से कोई छोटा-मोटा अपराध कर बैठता है और उस अपराध के दण्डस्वरूप उसे जेल में बन्द कर दिया जाता है। जेल में दूसरे नामी अपराधियों की संगत से वह भी अपराधी बन जाता है। क्योंकि भले आदमियों के साथ उसका कोई सम्पर्क नहीं रह जाता। अब आप बताइये कि अपराधी बनने के अतिरिक्त वह और बन ही क्या सकता है। इसके विपरीत यदि उसे भले लोगों का संग मिलता तो वह एक सुयोग्य नागरिक बन सकता था।

लोगों के जैसे विचार होते हैं, वे अन्ततो गत्वा वैसे ही बन जाते हैं। ये विचार लोगों को अनेक माध्यमों—संग, अध्ययन, सिनेमा, समाचार-पत्र—से प्राप्त होते हैं। ये विचार हमारी प्रवृत्तियों को पुष्ट करते हैं। सदा चोर-डाकुओं के किस्से पढ़ने वाले, मार-धाड़ की फिल्में देखने वाले लोग वही कुछ तो बनेंगे। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि बचपन में 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'श्रवण कुमार' नाटक देखकर उनके मन में सत्य के प्रति निष्ठा और मातृ-पितृ भक्ति की भावना को बहुत बल मिला।

अनेक अपराधियों ने पूछ-ताछ करने पर यह स्पष्ट कहा है कि अपराधों की ओर उनका रुझान सस्ती किस्म के उपन्यासों और स्टंट फिल्मों को देखने से हुआ है। इसलिए हमें अपने व्यवहार में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसके द्वारा किसी दूसरे में दूषित भावों की उत्पत्ति न हो।

जब हम किसी महान् लेखक की कोई सुन्दर कृति पढ़ते हैं, तो हमारे मन में स्थित सद्भाव—उत्साह, आनन्द, परोपकार आदि पुष्ट होते हैं। हमारे देश में तुलसीदास की रचना 'रामचरित मानस' ने कितने ही लोगों के मन में सद्भावों को उत्पन्न किया है। इसके विपरीत कुरुचिपूर्ण पुस्तकें पढ़ने से या कुत्सित लोगों का संग करने से कुमार्ग-गामी ही बनना होगा।

लेखक, अध्यापक, अभिभावक और पत्रकार सबका यह कर्त्तव्य है कि वे ऐसे भावों—सद्भावों की सृष्टि करें जिनसे बालकों के मन में, दया-करुणा, साहस-धैर्य, प्रसन्नता और आत्म-विश्वास बढ़े। श्रम, सत्यता और सरलता को वे अपनाएं। सदाचारी और सुशील बनकर वे उन्नति की ओर बढ़ें।

किसी व्यक्ति के दुराचारी होने का मुख्य कारण यही होता है कि उसमें बाल्यावस्था से ही कुछ दुर्गुण अपना डेरा जमा लेते हैं और समय पाकर उग्ररूप धारण कर लेते हैं। जिस घर में घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, कलह आदि का बोल-बाला होता है, उस घर के बालक सद्गुणी और सदाचारी कैसे हो सकते हैं! जैसा बीज बोया जाएगा, वैसे ही फल लगेंगे। जो बालक प्रतिदिन घर में अपने बड़ों को झूठ बोलते देखता है, उस का सत्यवादी बनना अत्यन्त कठिन है। ईर्ष्या और द्वेष से प्रेम और सद्भाव का जन्म नहीं हो सकता। लोभ के वातावरण में स्वार्थ-त्याग का पौधा नहीं पनप सकता और निर्दयता से सहानुभूति का जन्म नहीं हो सकता।

बोस्टन के सुप्रसिद्ध मनोविज्ञान विशेषज्ञ डा० वोरसेस्टर का कहना है कि सूचनाओं के द्वारा दुश्चरित्र बालकों को सुधारा जा सकता है। जिस समय बालक अर्ध सुप्तावस्था में हो, उस समय धीरे-धीरे उसे अच्छे आचरण का उपदेश देना चाहिये। यह उपदेश स्पष्ट शब्दों में होना चाहिये। अर्ध निद्रा की इस अवस्था में कही गई बातें सीधे बालक के हृदय में बैठ जाती हैं और प्रभावकारी सिद्ध होती हैं। उन्होंने इस विधि से अनेक बालकों के चरित्र में वांछित सुधार किया था और उन्हें अच्छा नागरिक बनाने में सफलता प्राप्त की थी। वे इस विधि द्वारा झूठ, चोरी क्रोध, भय, उद्दण्डता तथा हकलाने की आदत को छुड़ाने में भी सफल हुए।

परिस्थितियों का हमारे चरित्र पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। हमारे मन में उठने वाले भाव-विचार हमारे कर्मों की रूप-रेखा निर्धारित करते हैं और साकार रूप धारण कर लेते हैं। हमारे सारे कार्यों-व्यवहारों का मूल बीज हमारे विचार ही होते हैं। इसलिए सबसे पहले हमें अपने मन में उठने वाले विचारों को सद्भाव मूलक बनाना होगा। आगे का काम तो स्वयं होने लगेगा। परिवर्तन बाहर से नहीं भीतर से करना होगा। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर कहा जाता है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। दृढ़ आत्म-विश्वास और अजेय संकल्पशक्ति द्वारा हम उसी प्रकार बाहरी प्रभावों से बचे रह सकते हैं जैसे एयर कंडीशन स्थान बाहरी तापमान से। यही नहीं, हम अपनी सात्विक वृत्तियों से दूसरों को भी प्रभावित कर सकते हैं और अपने आस-पास सद् विचारों का प्रचार-प्रसार करके सुख और आनन्द की सृष्टि कर सकते हैं।

मन को शिव संकल्प वाला बनाकर जहां अपने चरित्र का विकास किया जा सकता है, वहां अनेक रोगों से भी बचा सकता है। डा० वोरसेस्टर ने अनेक प्रयोगों द्वारा उक्त तथ्य को सप्रमाण सिद्ध कर दिखाया है। प्रत्येक मानव के भीतर जो दैवी संपद् है, उसे जाग्रत-विकसित करके हमें अपने को और दूसरों को ऊपर उठाना चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी देखने-सुनने में आता है कि कोई व्यक्ति वर्षों दुराचार पूर्ण जीवन व्यतीत करने के बाद एकाएक किसी महात्मा या सत्पुरुष की संगति के प्रभाव से बदल जाता है और सदाचार पूर्ण जीवन अपना लेता है। उसे देखकर प्रायः लोग कहा करते हैं कि अमुक व्यक्ति का उस पर इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि वह एकाएक बदल गया। परन्तु वास्तविकता यह होती है कि परिवर्तन बाहर से न होकर भीतर से होता है और भीतर की प्रसुप्त सद् वृत्ति ही जाग्रत होकर यह परिवर्तन करती है। यह चमत्कार राक्षसी सम्पद् पर दैवी सम्पद् की विजय से सम्पन्न होता है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने को सदा अभागा समझते हैं और दूसरे लोग भी उन्हें अभागा मानते हैं। पर सचाई यह है कि उन्होंने स्वयं ही अपने को अभागा बनाया होता है। यदि वे अपने मन से अपने अभागा होने का विचार निकाल दें और उसके स्थान पर अपने भाग्यवान्

होने का विचार बनाएं और तदनुरूप आचरण करने लगें तो वे निश्चित ही देखेंगे कि उनका भाग्य पलट गया है। विचारों की यही जादुई शक्ति है जो भिखारी को भगवान् और नर को नारायण बना देती है। हमें दुनिया को नहीं, अपने को ही बदलना चाहिये।

विकासवाद सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य डार्विन का मत है कि प्रत्येक मानसिक अवस्था का हमारी शारीरिक व्यवस्था पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि हमारी मानसिक अवस्था का प्रभाव हमारे चेहरे पर स्पष्ट झलकता है और लोग हमारी सूरत देखकर पूछ उठते हैं कि आज तो आप बड़े प्रसन्न नजर आते हैं या आज आप उदास दिखाई देते हैं। क्रोध में आंखों का लाल हो जाना चेहरा तमतमाना, वाणी में कठोरता, होंठों का फड़कना और शरीर में ताप का बढ़ना सब की जानी-पहचानी बातें हैं। इसके विपरीत जब हम एकाग्र चित्त होकर परमात्मा का ध्यान करते हैं या सेवा और परोपकार का कोई कार्य करते हैं तो गंभीर और शान्त दिखाई देते हैं। अभिप्राय यह है कि मानसिक अवस्था का शरीर पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है। क्या आपने कभी यह अनुभव नहीं किया कि किसी दुष्ट व्यक्ति को पहली बार देखकर ही, बिना किसी के बताए हम जान जाते हैं कि यह व्यक्ति भला नहीं है। कौन हमसे यह सब कह जाता है। इसलिए मन में सदा सत्य, शिव और सुन्दर को ही स्थान दीजिए, असद् विचारों को बलपूर्वक बाहर रखिये और सत्संग तथा सत्साहित्य के अध्ययन द्वारा सद्वृत्तियों का पोषण करते रहिये जिससे वास्तविक आनन्द की प्राप्ति हो सके और शान्ति प्राप्त हो।

मनुष्य के मन में उत्पन्न होने वाले भाव पूर्व संस्कारों से तथा बाहरी वातावरण के प्रभाव से उपजते हैं। मन की उपमा खेत से दी जाती है जो बड़ी ही सार्थक है। खेत में हम जो कुछ बोते हैं, वह उपयुक्त जल-वायु और खाद पाकर तो पैदा होता ही है, इसके अतिरिक्त पहले के पौधों के झड़े हुए बीज और वायु तथा पक्षियों द्वारा गिराए गए बीज भी उत्पन्न होते हैं। अनावश्यक घास-पतवार को प्रयत्न पूर्वक उखाड़ फेंकना होता है और वांछित पौधों की बढ़वार के लिए अच्छी खाद और पानी

की व्यवस्था करनी पड़ती है। पशुओं-पक्षियों और रोगों से बचाव के लिए भी बाड़ लगाना तथा अन्य सुरक्षात्मक प्रबन्ध करने पड़ते हैं। इस पर बीज का बढ़िया किस्म का होना परम आवश्यक है। आप जानते हैं कि अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए कृषि-विशेषज्ञों ने बीजों में अनेक गुणात्मक परिवर्तन किये हैं। यही स्थिति विचार रूपी बीज की भी है। जो-जो चीजें एक के लिए आवश्यक हैं, वही दूसरे के लिए भी आवश्यक हैं। हम अनेक साधन-स्रोतों से भाव ग्रहण करते हैं। इनमें सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति, पुस्तकें, घटनाएं और अनेक दृश्य-श्रव्य साधन सम्मिलित हैं। इस भाव-सामग्री में अच्छा-बुरा—सब कुछ हो सकता है और सभी का हम पर प्रभाव पड़ता है। अब देखना यह है कि हमारे गृहीत भाव अधिकतर अच्छे हैं या बुरे। इस का उत्तर ही इस बात का भी उत्तर होगा कि हम अच्छे बनने वाले हैं या बुरे।

परन्तु यह कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में ईश्वर विद्यमान रहता है क्योंकि जीव उसी का अंश होने के कारण स्वयं भी ईश्वर है। इस ईश्वर को आत्मा, चेतना आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। यह आत्म तत्व हमें बार-बार चेतावनी देता रहता है। किन्तु जैसे शीशे पर धूल जम जाने के कारण उसमें प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देता, वैसे ही असद् विचारों से हमारी आत्मा पर एक प्रकार का आवरण पड़ जाता है और उसकी चेतावनी हम नहीं सुन पाते। आवश्यकता इस बात की है कि इस ईश्वर पर हम मैल न जमने दें और उसके संकेतों को ध्यान से सुनें। इस ईश्वर तत्व को जाग्रत रखें। यही वह ध्रुव तारा है जो पथ से भटके जीवन-पोत को भी सही दिशा दिखा सकता है और गन्तव्य तक पहुंचाने में सहायक हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि जमी हुई धूल को भली प्रकार झाड़-पोंछ डालें, नई धूल न पड़ने दें जिससे आत्म-साक्षात्कार हो सके। यद्यपि आत्म ईश्वरांश होने से सदा निर्विकार रहती है परन्तु जैसे शीशा बाहरी रंगों की छाया को ग्रहण करके उसी रंग का दिखाई देने लगता है और वैसे ही रंग का प्रक्षेपण करता है, यद्यपि शीशा स्वयं रंग में नहीं रंगता। वह रंग की छाया पड़ने से रंगदार दीखता अवश्य है पर रंगदार होता नहीं।

१४

मानसिक चिन्ता

'जो होना है, वह होकर रहेगा, और जो नहीं होना है, वह कभी नहीं होगा, चिन्ता-विष को नाश करने वाले इस अमृत का पान लोग क्यों नहीं करते ! —नीति

चिन्ता ता को कीजिये जो अनहोनी होय। —नानक

चिता और चिता में एक बिन्दु का ही अन्तर है। चिता केवल मुर्दों को जलाती है और चिता जीवितों को ही जला डालती है। —सुभाषित

प्राय: देखा जाता है कि लोग तीन तरह के दुःखों से दुःखी रहते हैं। एक तो उन दुःखों से जो कभी उन्हें हुए थे, दूसरे उन दुःखों से जो वर्त्तमान में उन्हें भोगने पड़ रहे हैं और तीसरे उन दुःखों से जिनके भविष्य में होने की वे कल्पना कर लेते हैं। अभिप्राय यह कि वर्त्तमान समय के कष्ट जो यथार्थ में उन्हें भोगने पड़ रहे हैं, उनके अतिरिक्त भूत और भविष्य के कष्टों का स्मरण और कल्पना करके वे अपने कष्टों को तिगुना बना लेते हैं।

यदि कोई महात्मा पुरुष संसार से चिन्ता का नाश कर देता तो वह संसार का इतना अधिक उपकार करता जितना उससे पूर्व जन्मे समस्त महात्माओं और वैज्ञानिकों ने मिलकर भी न किया होगा। प्राय: सभ्य जातियों के लोग उन आदिवासियों की हालत पर बड़ी दयापूर्ण बातें करते हैं जो कल्पित देवी-देवताओं के भय से सदा भयभीत रहते हैं। परन्तु वे

भूल जाते हैं कि उनके पड़ोस में रहने वाले सभ्य लोगों की दशा उन आदिवासियों से कम शोचनीय नहीं है। प्रायः सभ्य जातियों के शिक्षित लोग दिन-रात अनेक प्रकार की ऐसी कल्पित भीषण चिन्ताओं से ग्रस्त रहते हैं कि उन्हें न तो भोजन ही रुचिकर लगता है और न रात को नींद ही आती है। चिन्ता से ग्रस्त वे रात-दिन दुखी रहते हैं और उनका स्वास्थ्य भी चौपट हो जाता है। जीवन पर्यन्त यह चिन्तारूपी डायन उनका पीछा नहीं छोड़ती। हर स्थान और हर अवसर पर, घर, दुकान और दफ्तर में जहां कहीं भी देखें चिन्ताग्रस्त चेहरे आप को दिख जाएंगे।

चिन्ता के कारण मानव बुद्धि और स्वास्थ्य का जो ह्रास होता है, उसका अनुमान लगाना सहज नहीं है। पागलखानों में भर्ती होने वालों में बहुत-से चिन्ता के शिकार पाए जाते हैं। यह बुद्धिमानों को मूर्ख, वीरों को कायर आशा-उत्साह से सम्पन्न व्यक्तियों को हताश और निरुत्साह बना देती है। इसके प्रभाव से उत्पन्न होने वाले दोषों की संख्या अनगिनत है। मनुष्य जाति की जितनी हानि चिन्ता के कारण हुई है, सम्भवतः अन्य किसी कारण से नहीं हुई होगी।

यह चिन्ता है, जो लोगों को अनेक प्रकार के दुष्कर्म और पाप करने के लिए विवश करती है। यही है जो लोगों को शराबी और नशेबाज बनाती है। चिन्ता से सताए हुए व्यक्ति, इससे छुटकारा पाने के लिए अपनी आत्मा और शरीर तक बेचते देखे जाते हैं। पर इतने पर भी यह बैरिन उनका पीछा नहीं छोड़ती। इसीसे मुक्त होने के लिए लोग आत्म-हत्या कर लेते हैं। इतना होने पर भी सब कुछ जानते-बूझते हुए भी लोग चिन्ता करना नहीं छोड़ते। जैसे चिन्ता करना उनका सहज स्वभाव हो। खाते और सोते समय भी लोग चिन्ता में डूब रहते हैं। इतनी प्रिय है लोगों को चिन्ता!

सभी यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि अपनी शक्तियों के उपयोग से लाभ उठाने तथा सुखी और सफल जीवन बिताने के लिए चिंता के चंगुल से बचना चाहिये। फिर भी पता नहीं क्यों, इससे अपने आपको मुक्त नहीं कर पाते। कितने आश्चर्य की बात है कि लोग भविष्य में आने

वाली विपत्तियों की झूठी कल्पना करके अपने आपको चिन्ता में डाल लेते हैं। यह चिन्ता राक्षसी हमारे हाथ-पांव जकड़ देती है और हमें कुछ करने के योग्य नहीं छोड़ती। आश्चर्य की बात यह है कि लोग सब कुछ समझते हुए भी कुछ नहीं समझते हैं और चिन्ता से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं करते। चिन्ता के बारे में एक मजेदार बात है कि यह मूर्खों को अपना शिकार कम बनाती है। प्रायः तथाकथित बुद्धिमानों पर ही इसका आक्रमण होता है

एक मालिक जानता है कि मेरा अमुक नौकर चोर है जब कभी उसे अवसर मिलता है, कुछ न कुछ चुरा लेता है। किन्तु यह जानते हुए भी मालिक उसे अपने यहां से नहीं निकालता तो दोष किसे दिया जाए! यही बात सदा चिंतित रहने वालों की समझनी चाहिये। यह सत्यानाशी चिन्ता सदा हमारी कुछ न कुछ हानि करती ही रहती है। फिर भी हम इसे अपने मस्तिष्क से बाहर निकालने का साहस नहीं करते। घर का चोर नौकर हमारी केवल आर्थिक हानि करता है किन्तु यह तो धन, यौवन-शक्ति-स्वास्थ्य भूख-नींद सभी कुछ का हरण कर लेती है। प्राणों तक के लिए संकट उत्पन्न कर देती है। ऐसे अनिष्टकारी शत्रु को रात-दिन अपने मन-मस्तिष्क में बिठाए रखना परले सिरे की मूर्खता नहीं तो और क्या है!

सभ्य संसार के लोग उन जंगलियों के अन्धविश्वासों की तो खिल्ली उड़ाते हैं जो अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अपने अंगों को छेदते या काटते के हैं तथा इस उद्देश्य से तरह-तरह कष्ट सहन करते हैं किन्तु क्या उन सभ्यों की दशा उनसे जरा भी बेहतर कही जा सकती है जो जान-बूझकर तरह-तरह के मानसिक कष्टों को सहन करते हैं। अभी जिन बातों के होने में वर्षों की देर है तथा जिनका होना निश्चित भी नहीं है, उनके लिए हम आज ही से घोर चिन्ता करने लगते हैं। और यह चिन्ता उनके तन-मन को सुखा डालती है। चिन्ता के मारे वे भीतर से खोखले हो जाते हैं और बुढ़ापा असमय ही उन्हें आ घेरता है।

चिन्ता की यह बीमारी महिलाओं में विशेष रूप से देखी जाती है। कोई बच्चा यदि दो-चार घंटे, या दो-चार दिन के लिए कहीं बाहर चला

जाता है या पतिदेव काम से समय पर नहीं लौटते हैं तो वे चिन्ता से व्याकुल हो जाती हैं। तरह-तरह के अनिष्टों की कल्पना करने लगती हैं, बार-बार आने के रास्ते को देखती रहती हैं और घर भर को परेशान कर डालती हैं। उन्हें यही भय लगा रहता है कि बच्चा कहीं दुर्घटना-ग्रस्त न हो गया हो, किसी ने उसे मारा-पीटा न हो और बीमार न पड़ गया हो। पतिदेव समय पर नहीं लौटे तो जरूर कुछ अनिष्ट हुआ होगा। किसी सवारी से टकरा गए होंगे या ऐसा ही कुछ और घटित हुआ होगा। यद्यपि उनका पिछला अनुभव इस बात का साक्षी होता है कि बच्चे सदा सकुशल लौट आते हैं और पति देव के न लौटने का कारण काम की अधिकता या सवारी का न मिलना तथा रास्ते में खराब हो जाना भी होता है। कभी किसी आवश्यक कार्य से उन्हें किसी के यहां जाना पड़ सकता है और हो सकता है कि कोई मित्र उन्हें जोर देकर सिनेमा दिखाने ले गया हो। आप उन्हें कितना ही समझाइये पर वे आपकी एक नहीं सुनेंगी और अनिष्ट-कल्पना में व्याकुल रहेंगी। तरह-तरह के मानसिक कष्ट भोगेंगी। यदि कोई घर का व्यक्ति दूर गया हो और इस बीच कहीं से कोई तार आ जाए तब तो कहना ही क्या! तार को बिना पढ़े या पढ़ाए वे रोने-चिल्लाने लगेंगी। इस बात की पूरी संभावना है कि तार में कोई शुभ समाचार हो। पर जिन्हें चिन्ता में घुलने का रोग लग जाता है उन्हें अच्छी बात—शुभ कल्पना सूझती ही नहीं।

दिन भर व्यर्थ की चिन्ता में घुलते रहने के कारण शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता है और स्नायु तनाव के कारण खिंचे रहते हैं। शाम तक शरीर थकान के कारण शिथिल हो जाता है और भूख मर जाती है। जब बिस्तर पर सोने जाते हैं तब भी नींद के बजाए चिन्ता आ घेरती है। चिन्ता! चिन्ता!! चिन्ता!!! रात-दिन चिन्ता। तभी तो किसी ने कहा है कि चिता मुर्दों को जलाती है और चिन्ता जीवितों को।

कठिन से कठिन शारीरिक श्रम करने से भी शक्ति का उतना ह्रास नहीं होता जितना निठल्ले बैठकर चिन्ता करने से होता है। किसी काम की कठिनाइयों की चिन्ता कर लेते हुए, प्रत्यक्ष रूप में काम करने से

पहले अपने मस्तिष्क में हजारों बार उस काम का पूर्वाभ्यास अपनी कल्पना में करते रहते हैं और कार्य की अरुचिकर अवस्थाओं को सोच-सोचकर परेशान होते रहते हैं। परिश्रम स्वरूप जब काम करने का अवसर आता है तो हम पहले ही शिथिल और थके हुए होते हैं। काम के प्रति उत्साह के बदले अरुचि ही हमें अधिक होती है। इन कारणों से उस काम में असफलता अवश्यंभावी हो जाती है।

यह तो निश्चित ही है कि जब तन-मन स्वस्थ नहीं रहता तो कोई भी काम ठीक से पूरा नहीं होता। इससे हमारी चिन्ता और बढ़ जाती है। इस प्रकार इस सर्वनाशिनी चिन्ता के चक्के में पिस कर हम सब कुछ खो देते हैं —स्वास्थ्य, शक्ति और समृद्धि सभी कुछ स्वाहा हो जाता है। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों और डाक्टरों ने अपने अनुसन्धानों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि चिन्ता के कारण रक्त में एक प्रकार का विष उत्पन्न हो जाता है। यह विष स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। चिन्ता से दूसरी बड़ी हानि यह होती है कि आदमी की अकल मारी जाती है। पागलपन को जन्म देने का श्रेय चिन्ता को ही है। गम गलत करने के लिए ही लोग तरह-तरह की नशीली चीजों का सेवन करने लगते हैं। नशा टूटने पर चिन्ता फिर आ घेरेगी, इस भय से लोग रात-दिन नशे में रहने लगते हैं और जो परिणाम होता है, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

जो व्यक्ति अपने जीवन में कोई काम सफलतापूर्वक न कर सका हो, उसे सबसे पहले छोटी-बड़ी चिन्ताओं से अपने आपको मुक्त कर लेना चाहिये। ये छोटी-छोटी चिन्ताएं हमारी उन्नति में बड़ी रुकावट डालती हैं। घोड़ा लम्बी यात्रा से उतना परेशान नहीं होता जितना ऊपर बैठने वाली मक्खियों से। गाड़ी खींचने से उसे उतनी परेशानी नहीं होती जितनी कोचवान द्वारा बार-बार लगाम खींचने या चाबुक फटकारने से होती है। ठीक इसी तरह आदमी भी बड़े-बड़े कामों से उतना परेशान नहीं होता जितना छोटी-छोटी चिन्ताओं से। इसलिए समझदार आदमी को चाहिये कि वह अपने को सदा चिन्ता-मुक्त रखे।

बहुत-सी आपत्तियां ऐसी होती हैं, यदि पहले से उनकी अधिक चिन्ता

की जाए, तो यों भले ही वे कभी न आने वाली हों, परन्तु लगातार की चिन्ता जैसे उनके लिए रास्ता साफ कर देती है और वे सचमुच आ जाती हैं। रोगों को ही लीजिये। यदि किसी रोग की बराबर कुछ समय तक चिन्ता की जाए, और सोचा जाए कि अमुक रोग होने वाला है तो और कोई रोग का कारण न होने पर भी केवल चिन्ता के ही कारण वह रोग हो जाएगा। संक्रामक रोगों के बारे में देखा गया है कि जो लोग उनके भय से चिन्तित रहते हैं, उन्हें रोग आ घेरता है। ऐसे कठिन अवसरों पर विशेष मनोबल से काम लेना चाहिये और चिन्ता से वैसे ही बचना चाहिये जैसे छूत से बचने का प्रयत्न किया जाता है।

एक बार प्रो० गेट्स ने स्वयं अपने ऊपर परीक्षण किया था। उन्होंने अपने हाथ का अंगूठा खड़ा किया है और दस मिनट तक अपना सारा ध्यान उसी पर केन्द्रित रखा। उन्होंने कल्पना की कि मेरा अंगूठा कुछ अधिक गर्म हो रहा है। परिणाम स्वरूप जब अंगूठे का तापमान देखा गया तो दो डिग्री बढ़ा हुआ था। अंगूठे में रक्त का दबाव बढ़ गया था। इससे यह सिद्धान्त प्रतिपादित होता है कि यदि अंग विशेष पर विचार-शक्ति केन्द्रित करके उसके रोगी होने का विचार किया जाए तो निश्चय उस अंग में रोग के लक्षण प्रकट होने लगेंगे।

बहुत-से लोग व्यर्थ ही अपने बारे में अनेक प्रकार के रोगों की कल्पना कर लिया करते हैं। वे समझते हैं हमें अमुक रोग है। इस तरह निरन्तर रोग का चिन्तन करते रहने से वह या उससे मिलता-जुलता कोई रोग हो ही जाता है। सभी जानते हैं कि सर्दी-जुकाम, कब्ज, सिर दर्द आदि छोटे-छोटे रोग प्रायः यदा-कदा प्रत्येक व्यक्ति को होते ही रहते हैं। जो लोग इन छोटी-छोटी बीमारियों की चिन्ता नहीं करते, उनकी बीमारियां कुछ समय बाद ठीक हो जाती हैं किन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं जो इन बीमारियों के कारण दिन-रात चिन्तित रहने लगते हैं। वे अपनी कल्पना से रोग को बढ़ा-चढ़ाकर देखने लगते हैं, बड़ी भयानक कल्पना कर लेते हैं। वे डाक्टरों-वैद्यों के पास चक्कर काटने लगते हैं और कोई एक दवाई ज्यादा दिन तक नहीं कर पाते। कभी यह, तो कभी वह। इस तरह वे अपने ही बनाए जाल में फंस जाते हैं और अन्त में बीमार

पड़ जाते हैं। कहावत है कि वहम की दवा तो हकीम लुकमान के पास भी नहीं है। वास्तविक रोग तो उनके मस्तिष्क में होता है। जब तक वह दूर नहीं होगा, कोई भी औषध कारगर नहीं हो सकती। ऐसे लोग यदि व्यर्थ की चिन्ता छोड़ सकें और इस बात को भूल सकें कि वे रोगी हैं तो निश्चय ही स्वस्थ-प्रसन्न हो सकते हैं।

चिन्ता का सबसे अधिक प्रभाव हमारी पाचन क्रिया पर पड़ता है। जब पाचन-क्रिया गड़बड़ा जाती है तो सारा शरीर-यन्त्र शिथिल पड़ जाता है। रक्त दूषित हो जाता है। भूख और नींद जाती रहती है। चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है और बाल असमय ही पक जाते हैं। और अन्त में न केवल चिन्ताग्रस्त व्यक्ति अपने को बूढ़ा समझने लगता है, अपितु सचमुच उसे बुढ़ापा आ घेरता है। इस दुखद कहानी का अन्त होता है मौत के साथ।

अनेक प्रकार की चिन्ताओं में से किसी कार्य में असफलता मिलने से जो चिन्ता होती है, उसका परिणाम बड़ा भयानक होता है। इस चिन्ता से मनुष्य की समस्त महत्वाकांक्षाओं पर कुठाराघात हो जाता है। उसकी कार्यकारी शक्ति नष्ट हो जाती है और उत्साह जो समस्त क्रियाओं का प्रेरक तत्त्व है, नष्ट हो जाता है। अतः किसी उद्योग में असफल होने पर कभी चिन्तित या निराश नहीं होना चाहिये। इसके विपरीत दोबारा नए उत्साह के साथ जुटकर पिछली बार रह गई कमियों को दूर करना चाहिये और कार्य को सिद्ध करके दिखाना चाहिये। इस प्रकार निराशा-जन्य हानियों से तो बचा ही जा सकता है, साथ ही कार्य-सिद्धि के आनन्द का भी उपभोग किया जा सकता है।

बहुत-से लोग अपने पुराने दुखड़ों को याद कर-करके दुःखी रहा करते हैं। निश्चय ही उनके विगत जीवन में सुख के भी अनेक प्रसंग रहे होंगे पर वे उन्हें भूले रहते हैं। लोकोक्ति है: "बीती ताहि बिसारी दे, आगे की सुधि ले।" बीती बातों के लिए बैठे बिसूरते रहने से लाभ ही क्या! विगत घटनाओं से हमें इतनी ही सीख लेनी चाहिये कि जिन भूलों, त्रुटियों और पुरुषार्थ की कमी के कारण हमें असफलता का मुंह देखना पड़ा उन्हें दोबारा न दोहराएं। इससे अधिक नहीं। सदा पीछे की ही

और देखने वालों का वर्तमान और भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। 'जो बीत गई, सो बात गई।' अब उसको लेकर वर्तमान की उपेक्षा करना और भविष्य की ओर ध्यान न देना बुद्धिमत्ता नहीं कही जा सकती। वर्तमान को बनाने और भविष्य को संवारने के लिए ही भूत काल की घटनाओं का उपयोग होना चाहिये। भूत नष्ट हो चुका है तो वर्तमान और भविष्य तो हाथ में है, उन्हें अपने ही हाथों क्यों चौपट कर रहे हैं। हमें जीवन के कृष्णपक्ष से दृष्टि हटाकर शुक्लपक्ष की ओर देखना चाहिये। कृष्ण पक्ष जो कि अन्धकार से परिपूर्ण है, वहां क्या दिखने वाला है, क्या मिलने वाला है।

जितने अधिक समय तक कोई दुखद चित्र हमारे मन में बना रहता है, उतना ही वह पक्का और स्थायी हो जाता है। उसे बाहर निकाल फेंकना दिनों-दिन कठिन होता जाता है। इसलिए दुखद घटनाओं की स्मृति को यथाशीघ्र मन से बाहर निकाल देना चाहिये। व्यर्थ चिन्ता से न कभी किसी को लाभ हुआ और न आगे होगा। व्यर्थ की चिन्ता और चिन्ता की व्यर्थता को हमें समझ लेना चाहिये। चिन्ता से हालत सुधरती नहीं, बिगड़ती है। इसलिए चिन्ता को दूर रखिये, चिन्ता से दूर रहिये। चिन्ता से बचने का एक अचूक उपाय यह है कि तुरंत काम में जुट जाइये। खाली हाथ मत बैठिए। एकान्त में कम से कम रहिये। निरन्तर प्रयत्न और अथक परिश्रम द्वारा ही भाग्य को बदला जा सकता है और चिन्ता से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। शारीरिक और मानसिक शक्ति के उपयोग से कार्य सिद्धि होती है। चिन्ता इन दोनों शक्तियों का नाश करती है। इसलिए चिन्ता छोड़िये। निश्चिन्त हो जाइये।

कुछ लोग जब भी किसी परिचित या मित्र से मिलते हैं तो अपने दुखों का रोना रोने लगते हैं। यह आदत बहुत बुरी है और सदा-सदा के लिए छोड़ देने योग्य है। संसार में दुःख-क्लेश पहले ही पर्याप्त हैं। रो-रोकर उन्हें और मत बढ़ाइये। अपने दुखों को सुनाकर दूसरों को दुखी मत कीजिये। स्वस्थ और प्रसन्न रहने की आदत डालिए और अपने सम्बन्धियों और मित्रों को भी स्वस्थ प्रसन्न रहने की प्रेरणा दीजिये। सदा प्रसन्न और हंसी से खिलखिलाते लोगों के पास चिन्ता नहीं आती

है। आए भी तो वे उसे धूल की तरह झाड़-पोंछकर फिर प्रसन्न हो जाते हैं।

चिन्ता, भय और निराशा के कारण पैदा होती है। इसके नाश के लिए विरोधी भावनाओं—जैसे उत्साह और आशा का मन में संचार होने से यह स्वयमेव टल जाती है। ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास और उसके कल्याणकारी स्वभाव के प्रति आस्था भी चिन्ता-नाश में बड़े सहायक होते हैं। अपने काम में रुचि लेते हुए उत्साह पूर्वक जुट जाइये। रही सफलता की बात, जिस चिन्ता में लोग अपने कर्तव्य तक की उपेक्षा करने लगते हैं; उसके लिए गीता के उस श्लोक को याद रखिये जिसमें भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा था :

तेरा अधिकार कर्म करने में है, फल में नहीं।

१५

भय

जाग्रत करो, उद्यत करो, निर्भय करो हे ! —रवीन्द्र

भय से मनुष्य की मानसिक, नैतिक और आत्मिक शक्तियों का नाश हो जाता है। गीता ने भी 'अभय' को सात्विक जीवन की पहली शर्त स्वीकार किया है।

भय के वास्तविक स्वरूप को समझकर ही भय से छुटकारा पाया जा सकता है। तो प्रश्न उठता है कि भय है क्या ? भय एक मानसिक भ्रम मात्र है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। फिर भी हम देखते हैं कि भय बड़ों के लिए वैसा ही डरावना है जैसा बच्चों के लिए भूत। बड़े-बूढ़े बच्चों को चुप कराने, उनको अपनी जिद् से हटाने के लिए भूत का भय दिखाते हैं। वे भली प्रकार जानते हैं कि भूत नाम की किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। बच्चों ने भी भूत को कभी देखा नहीं होता। फिर भूत का नाम सुनते ही वे भयभीत हो जाते हैं और हठ छोड़ देते हैं। वास्तव में बड़े लोग जान-बूझकर बच्चों के मन में भूत का भय बिठा देते हैं, जिससे अवसर पड़ने पर वे उन्हें डराकर मनचाहा आचरण करा सकें। ठीक इसी प्रकार जैसे अस्तित्वहीन भूत के डर से बच्चे कांप उठते हैं, बड़े लोग भय से उतने ही भयभीत रहते हैं। अत्याचारी लोग भय दिखा कर ही लोगों से मनचाहा आचरण कराते हैं।

मनुष्य तरह-तरह के भयों से संत्रस्त रहते हैं। भयभीत मनुष्य की समस्त शक्तियों का नाश हो जाता है। आशा और उत्साह समाप्त हो

जाते हैं। भय की अवस्था में जो भी काम किया जाता है, वह न तो ठीक होता है और न ही पूरा ही। भय मानसिक दुर्बलता और नैतिक बल की कमी का सूचक है। भय से बुद्धि कुंठित हो जाती है और अपना काम ठीक से नहीं कर पाती।

इस मनोभाव की शरीर पर तरह-तरह की प्रतिक्रियाएं होती हैं। पसीना छूटना, कांपना, जबान बन्द हो जाना, पेशाब या पाखाना निकल जाना, चेतना शून्य हो जाना, यहां तक कि कुछ लोग तो मर भी जाते हैं।

जब कभी आदमी को अपने कार्य में असफल होने का भय होता है तो कार्य के प्रति उसका सारा उत्साह और प्रयत्न मन्द पड़ जाता है। उसे अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई देने लगता है। कष्ट और दरिद्रता उसे मुंह फैलाए सामने खड़े दिखाई देते हैं। यहीं से उसका पतन शुरू हो जाता है। इस समय उसे कार्य सिद्धि के लिए दुगुने विवेक, पुरुषार्थ और उत्साह की आवश्यकता थी, जिससे संभावित विफलता को सफलता में बदला जा सकता। पर भावी के भय से जिसके हाथ-पांव फूल गए हों, वह क्या प्रयत्न करेगा। इस प्रकार वह व्यक्ति मानो कष्ट और दरिद्रता को अपनी ओर बुलाने लगता है। भयभीत आदमी की सारी योग्यता और सारे गुण जवाब दे देते हैं। इसके विपरीत कोई कठिन परिस्थिति आने पर यदि भयभीत न हो जाएं, पुरुषार्थ और साहस से काम लें, बुद्धि को विचलित न होने दें तो इस बात की पूरी संभावना है कि हम परिस्थिति पर विजय पा लें और संभावित असफलता को सफलता में परिवर्तित कर दें।

किसी घटित होने वाली घटना के पूर्वाभास मात्र से भयभीत होना मानो अपनी पराजय स्वीकार करना है। किसी शत्रु को सामने से आते देखकर यदि हम बिना कोई प्रतिकार किए अपना सिर झुका दें तो उसपर विजय पाने का प्रश्न कहां रह गया। इससे भी बुरा भय वह है जो बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के, केवल कल्पनाजन्य होता है। ऐसे काल्पनिक भय को किसी उपाय से दूर भी नहीं किया जा सकता। क्योंकि जब उस भय का कोई अस्तित्व ही नहीं है तो उपाय क्या हो सकता है। भय के

काल्पनिक चित्र बनाने वाले ये लोग प्राय: कहा करते हैं कि न जाने किस पर कब कौन-सी विपत्ति आ जाए। इसलिए सब प्रकार की विपत्तियों का सामना करने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिये। साधारणतया लगता है कि ये लोग बड़े समझदार हैं। पर इस प्रकार की बुद्धि को कुबुद्धि कहना ही ठीक लगता है।

वास्तविक भय के उपस्थित होने पर और उसका सामना करने पर मनुष्य को इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता जितना किसी भय की कल्पना से होता है। क्योंकि वास्तविक भय की स्थिति तो जब कभी सामने आएगी-आएगी, कल्पनिक भय तो दिन-रात मनुष्य के मन-मस्तिष्क पर छाए रहते हैं और बेचैन रखते हैं। अत: भय की निर्मूल और निराधार कल्पनाओं से अपने को बचाना चाहिये। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति ज्वर रोग से बहुत डरता है और सोचता है कि इससे बहुत अधिक कष्ट होता है। वह कल्पना कर लेता है कि ज्वर से मौत तक हो सकती है। और अमुक ऋतु में यदि अमुक प्रकार का ज्वर आ घेरे तब तो कहना ही क्या! अब यदि संयोगवश उस ऋतु में वैसा ही ज्वर हो गया तो मनोबल के अभाव में भय बहुत बढ़ जाएगा। शरीर और मन इस स्थिति में रोग का सामना ही नहीं कर पाते। रोग-प्रतिरोधक शक्ति भी क्षय हो चुकी होती है। अब यह ज्वर घातक सिद्ध हो सकता है और विश्वास के अनुसार प्राणघातक भी।

आवर्द्धक कांच आपने देखा होगा। उसमें से देखें तो छोटी वस्तु भी कई गुणा बड़ी दिखाई देती है। इसी तरह लोग कल्पना द्वारा भय को बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं। फिर जब उसके परिणाम को आंकते हैं तो उन्हें लगता है कि इससे पार पाना असंभव है। परिणाम होता है, समस्त शक्तियों का ह्रास। दुर्बल शरीर और भावुक प्रकृति के लोगों को भय बहुत सताता है। परन्तु जो शरीर और मन से बलवान् होते हैं वे आने वाली विपत्तियों की बहुत कम चिन्ता किया करते हैं। आगामी विपत्तियों के प्रति उनका दृष्टिकोण बड़ा स्पष्ट होता है। वे कहते हैं: जब कभी विपत्ति आएगी, देखा जाएगा। अभी से सोच-सोचकर क्यों अपने को परेशान करें। वे अपने आत्मविश्वास के बल पर जानते हैं कि जब कोई

संकट उपस्थित होगा तो हम प्राण-पण से उसका प्रतिकार करेंगे। इस प्रकार सोचने के परिणाम स्वरूप उनमें संकटों का सामना करने की पूरी-पूरी शक्ति बनी रहती है।

बहुत-से माता-पिता अपने अज्ञान के कारण छोटे बच्चों में अनेक भयों और आशंकाओं का संचार करते रहते हैं। पहले तो भूतों-प्रेतों का भय उनके मन पर बिठाते हैं और अमुक-अमुक स्थान पर अकेले न जाने की बात कहते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसा करोगे तो यह हो जाएगा और वैसा करोगे तो वह हो जाएगा, का डर मन में बिठाते रहते हैं। बेचारे बालक और तो कुछ समझ नहीं पाते, केवल डरकर रह जाते हैं। बचपन में बने डर के ये संस्कार जन्मभर उन्हें भय से मुक्त नहीं होने देते। यह अस्तित्व-हीन भूत जीवन भर उनके सिर पर सवार रहता है और खून सुखाता रहता है। इसलिए बालकों को कभी भी डराना नहीं चाहिये। अपितु निर्भय और निःशंक बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

जिस बालक को कभी किसी बात से डराया नहीं जाएगा, वह क्या जानेगा कि भय किस चिड़िया का नाम है। बच्चों को डराना बहुत आसान है। पर बाद में उनके मन से भय को निकालना बड़ा कठिन काम है। मूर्ख माताएं बच्चों को सुधारने का तो उपाय जानती नहीं, बस, हर बात में भूत से डराया करती हैं। बच्चा किसी बात के लिए जिद्द करने लगा, मचला या रोया कि झट भूत से डराकर शान्त करने का यत्न करती हैं। भय से बालक चुप तो हो जाता है, परन्तु उस चुप होने का कारण उसका बहुत अधिक डर जाना ही होता है। यह भय बालक के शरीर और मन पर अपना घातक प्रभाव डालता है।

डाक्टर हालकम्ब कहते हैं कि भय एक ऐसा सूत्र होता है जो यदि जीवन के आरंभ से आ जाए तो उसके अन्त तक बराबर चला चलता है। हम जन्म से ही अपने चारों ओर भय तथा आशंका देखते रहते हैं। जो माता हमें जन्म देती है, वह हमारे जन्म से महीनों पहले भयभीत रहती है कि प्रसव निरापद होगा या नहीं। जरा होश संभालते ही हम अपने माता-पिता तथा घर के बड़े-बूढ़ों से डरते रहते हैं। फिर शिक्षकों से डरते हैं, भूत-प्रेत से डरते हैं। घर और पाठशालों में मिलने वाले दण्ड का भय

हमें सदा त्रस्त रखता है। शरारती साथियों से भी हम भय खाते हैं और डाक्टरों की सूई से भी डरते हैं। परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने का डर अलग सताता है। बड़े होकर यह डर चिन्ता में बदल जाता है और सारे जीवन-रस को चूसता रहता है। काम-धन्धे के मिलने की चिन्ता, ऊपर के अधिकारियों का डर, विफलता का भय, घर-गृहस्थी की चिन्ताएं; इस तरह सारा जीवन ही भय और चिन्ता का निरन्तर सिलसिला बन जाता है। लोकापवाद, रोग, दुर्घटनाएं, कानून-कायदे और मृत्यु का भय इस भय की शृंखला में और जुड़ जाते हैं। इस प्रकार पर-लोक की चिन्ता को भी गिन लिया जाए तो मृत्यु-पर्यन्त वास्तविक और कल्पित भयों से हम डरते ही रहते हैं। ये भय कल्पित होने के साथ-साथ समाज के अन्धविश्वासों और रूढ़ियों पर भी आधारित होते हैं।

जब कभी किसी बैंक का दिवाला निकल जाता है तो बहुत-से लोग अच्छी साख वाले बैंकों में से भी रुपया निकाल लेते हैं। यह भी भय का ही परिणाम होता है। इस भय के परिणाम स्वरूप कभी-कभी अच्छे-खासे बैंक भी दीवालिये हो जाते हैं।

भय का एक अन्य रूप भी है जो बड़ा व्यापक है। बहुत-से लोगों को भय लगा रहता है कि दूसरे लोग हमारे बारे में न जाने क्या सोचते होंगे। वे अपने जीवन में हर काम करते समय इसी भय से त्रस्त रहते हैं। अमेरिका का एक रैड इण्डियन एक डाक्टर का मित्र था। डाक्टर ने उसे सहज भाव अपने घर निमंत्रित किया। जिस समय वह डाक्टर के घर पहुंचा उस समय वहां कई और लोग भी थे, जो वहां के पागलखाने के बोर्ड के सदस्य थे। रैड इण्डियन उन्हें पहचानता था। हंसी-मजाक की बातें हो रही थीं। उन सदस्यों में से एक ने उस रैड इण्डियन से पूछा कि आपका दिमाग तो ठीक है न? इतना सुनते ही वह बुरी तरह घबरा उठा। उसने मित्र डाक्टर से पूछा, क्या तुम मुझे पागलखाने में भेजना चाहते हो? बस, इतना कहने के बाद वह बेहोश हो गया और कुछ घंटों बाद मर गया।

एक बार एक उच्च चित्रकार एक ऐसे भवन में गया जहां बहुत-सी ठठरियां रखी हुई थीं। वह उन ठठरियों के चित्र बनाने के लिए बुलाया

गया था। चित्र बनाते-बनाते वह थक गया और उसे नींद की झपकी आ गई। इतने में भूकम्प का एक जोरदार झटका आया और उसकी नींद खुल गई। भूकम्प के कारण हिलती हुई ठठरियों को देखकर वह इतना डर गया कि एक खिड़की से बाहर कूद पड़ा। उसे कूदने से यद्यपि कोई चोट नहीं लगी थी किन्तु भय के कारण उसके प्राण निकल गए।

कई बार ऐसा देखने में आया है कि युद्ध-स्थल में लड़ते हुए सिपाही बिना गोली लगे ही मर गए हैं। उनकी मौत का कारण केवल यह सन्देह ही था कि उन्हें गोली लग गई है। न्यू आर्लियन्स में घटी एक घटना भी भय के घातक परिणाम का अच्छा उदाहरण है। एक बहुत ही हृष्ट-पुष्ट हब्शी चिकित्सा के लिए हस्पताल पहुंचाया गया। जो लोग उसे उठाकर लाए थे उन्होंने रास्ते में उसे यह कहकर बहुत डरा दिया था कि तुम्हें जो गोली लगी थी, वह तुम्हारे शरीर में ही रह गई है और उसके कारण बहुत ज्यादा खून बह रहा है। भय के कारण उस काले हब्शी का रंग एक दम सफेद पड़ गया। वह कांपने लगा और आसन्न मृत्यु के लक्षण दिखाई देने लगे। डाक्टरों ने अच्छी तरह जांच करके देखा तो पता लगा कि शरीर के ऊपर गोली लगने का कहीं कोई चिह्न नहीं है। बात यह हुई थी कि गोली एक ओर से आई थी और कपड़ों से छूती हुई निकल गई थी। जब उस हब्शी को दृढ विश्वास हो गया कि मुझे गोली नहीं लगी है तो वह स्वस्थ व्यक्ति की तरह बिस्तर से उठ खड़ा हुआ और अपने घर चला गया। घबराहट के कारण मौत के जो लक्षण प्रकट हुए थे, वे सब दूर हो गए। नेपोलियन महान् के बारे में कहा जाता है कि वह प्लेग के ऐसे भीषण रोगियों के पास जाने में भी नहीं हिचकिचाता था, जिनके पास जाते समय डाक्टर भी भय खाते थे। वहां जाकर वह रोगियों का स्पर्श करता था और उनका हाल-चाल पूछता था। उसका कहना था कि प्लेग से डरने वाला प्लेग का इलाज क्या करेगा?

सुखी और सफल जीवन के लिए निर्भय होना पहली शर्त है। बचपन से निर्भय रहने की शिक्षा दी जानी चाहिये। अनेक दोषों और त्रुटियों पर निर्भयता के द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। "जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है, मुर्दादिल क्या खाक जिया करते हैं।" साहसी व्यक्ति जीवन

में केवल एक बार मरता है किन्तु डरपोक दिन में न जाने कितनी बार मौत का कष्ट सहता है। इसलिए जहां जरा भी भय की संभावना हो, वहां मन में साहस, उत्साह और आशा के भाव को भर लेना चाहिये। संसार में कोई ऐसा भय नहीं है जो साहस के सामने ठहर सके। डाक्टर ड्यूक का मत है कि भय से पागलपन, बालों का पकना, पक्षाघात, गर्भ-पात आदि तरह-तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उन्हीं का कहना है कि जब कहीं कोई संक्रामक रोग फैलता है तो बहुत से लोग भय के कारण ही रोगी हो जाते हैं। एक कहानी है कि किसी आदमी को एक नगर की ओर जाती हुई मौत मिली। उसने पूछा कि तुम कहां और क्यों जा रही हो? मौत ने उत्तर दिया कि इस नगर में पांच सौ लोगों की मौत आई हुई है। वे महामारी के कारण मरेंगे। इसीलिए मैं वहां जा रही हूं। जब मौत वहां से लौटी तो वह आदमी फिर मिल गया। उसने मौत से पूछा कि तूने तो पांच सौ लोगों की मौत आने की बात कही थी किन्तु नगर में पन्द्रह सौ लोग मरे हैं। यह कैसे हुआ? मौत ने उत्तर दिया कि वास्तविक मौत तो पांच सौ की ही आई हुई थी। शेष सब महामारी के भय से बे-वक्त मर गए हैं।

जैसे शरीर के लिए अस्वास्थ्यकर भोजन को लोग नहीं खाते, उसी प्रकार हमें भय का भी परित्याग करना चाहिये। क्योंकि इससे भी अनेक शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। डाक्टर हालकम्ब का मत है कि भय भी एक भीषण संक्रामक रोग है। इससे हमें उसी प्रकार सतर्क और सचेत रहकर बचना चाहिये जिस प्रकार अन्य संक्रामक रोगों से बचते हैं। रूस में एक बार हैजा फैल गया। रोगियों से हस्पताल भर गए। इनमें से अनेक रोगी ऐसे थे, जिन में हैजे के बाहरी सारे लक्षण विद्यमान थे। किन्तु गहरी जांच-पड़ताल करने पर पता लगा कि उनके शरीर में हैजे के कीटाणुओं का नाम-निशान तक नहीं है। उनका सारा रोग केवल भय-जन्य था। इसलिए अधिकारियों ने नागरिकों के मनोबल को बनाए रखने के लिए अनेक उपायों से काम लिया और रोग पर विजय प्राप्त की।

अनेक लोग अपने धार्मिक विश्वासों के कारण मृत्यु के बाद होने वाले भीषण कष्टों की कल्पना से परेशान रहते हैं और जीवन-काल में ही उन कष्टों की कल्पना से दुःखी होते रहते हैं। कई लोग भविष्यवक्ताओं की भविष्यवाणियों से चिन्तित रहते हैं। किसी व्यक्ति से जब यह कहा जाता है कि तुम छत्तीस वर्ष की आयु में चल बसोगे तो उसके मन की अवस्था क्या होगी, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। मौत का यह भय ही उसकी मौत बन जाता है। इस प्रकार की बहुत-सी भविष्य-वाणियां केवल इस कारण सत्य सिद्ध होती हैं कि जिस बात की कल्पना या अनुमान बहुत दिनों तक बराबर किया जाता है, वह प्रायः मानसिक प्रवृत्ति के कारण घटित हो जाती है। मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है। लार्ड बायरन जब छोटी अवस्था के थे तभी एक भविष्यवक्ता ने उन्हें बता दिया था कि तुम सैंतीस वर्ष की अवस्था में मर जाओगे। इसके कारण वे वर्षों पूर्व से सदा चिन्तित रहा करते थे। अन्त में सैंतीसवें वर्ष में अपने उसी विश्वास के कारण और मानसिक-शारीरिक शक्ति के क्षय के कारण बीमार पड़ गए। बीमार हो जाने पर उन्हें अपनी मृत्यु और भी निश्चित जान पड़ी और रोग प्रतिरोधक शक्ति समाप्त हो गई। भविष्य-वाणी सच हो गई। वे मर गए। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जंगली और असभ्य जातियों के ही नहीं, सुशिक्षित समाज के लोग भी अन्धविश्वासों के कारण उत्पन्न भय से त्रस्त रहते हैं और तरह-तरह के कष्ट भोगते हैं।

यदि समूचे मानव समाज से किसी अचूक उपाय द्वारा झूठे भय और आशंकाएं मिटा दी जाएं तो मानव जाति का महान् उपकार हो सकता है। भय का यह दृढ़ बन्धन मानव समाज की उन्नति और कल्याण में बड़ी रुकावट है। प्रत्येक शिक्षित और समझदार व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं निर्भय रहता हुआ लोगों के मन से भय को दूर करने का प्रयत्न करे।

१६

आत्म संयम

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥
(जैसे घोड़ों को रोकने के लिए सारथि प्रयत्न करता है, उसी प्रकार मन को हरण करने वाले विषयों में विचरने वाली इन्द्रियों को बुद्धिमान् मनुष्य वश में करने का यत्न करे ।)
—मनुस्मृति

श्रीमती ओलिफेंट का कहना है कि यदि आप अपनी इच्छाओं को अपने वश में रख सकते हैं, तो मैं कहूंगी कि आप सुशिक्षित व्यक्ति हैं। और यदि आप में संयम का अभाव है तो आपकी सारी शिक्षा व्यर्थ है।

उपर्युक्त कथन में ऐसे सत्य का उद्‌घाटन किया गया है, जिसके सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। जो व्यक्ति स्वयं पर शासन नहीं कर सकता, वह कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। आत्म-संयम के अभाव में अनेक शिक्षित और योग्य व्यक्ति भी अपने जीवन में विफल-मनोरथ होते देखे गए हैं।

कई समझदार लोग भी जरा जरा-सी बात पर गुस्से से उबल पड़ते हैं। क्रोध की अवस्था में मनुष्य की सोच-विचार की शक्ति नष्ट हो जाती है, यह सभी जानते हैं। विवेक-बुद्धि के अभाव में, क्रोध के वशीभूत मनुष्य तरह-तरह के अनुचित एवं अकरणीय कार्य कर बैठता है। बाद में उन दुष्कृत्यों का परिणाम निन्दा, अपयश और दण्ड के रूप में भुगतना पड़ता है। जेलों में दण्ड भुगत रहे अनेक लोगों से पूछताछ करने पर पता

चला है कि इनमें बड़ी संख्या उन लोगों की है, जो क्षणिक क्रोध के कारण दूसरे पर कोई ऐसा घातक प्रहार कर बैठे हैं, जिस का उन्हें पछतावा है पर अपराध के समय क्रोध के प्रचण्ड वेग के कारण यह बात उनकी विचार-शक्ति में नहीं आई। वे वैसे साधारण नागरिक हैं और मार-पीट करना उनका स्वभाव नहीं है। क्रोध का वह क्षणिक वेग तो आया और चला गया किन्तु उसके परिणाम स्वरूप जीवन के महत्त्वपूर्ण सुनहरे वर्ष जेल में तरह-तरह के शारीरिक और मानसिक कष्ट झेलते हुए व्यतीत करने पड़ रहे हैं। पर 'अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियां चुग गईं खेत'। इस चाण्डाल क्रोध के कारण अनेक लोग अपनी प्रतिष्ठा, नौकरी, सम्पत्ति और बन्धु-बान्धवों को खो बैठते हैं। जिस मान-मर्यादा को बनाने में वर्षों लग जाते हैं, वह क्रोध के कारण क्षणभर में स्वाहा हो जाती है और पछताने के अतिरिक्त कुछ करते-धरते नहीं बनता है। अनेक लोगों का पारिवारिक जीवन बुढ़ापे में केवल इसलिए नारकीय हो जाता है कि वे अपनी जबान को लगाम नहीं लगाते और शारीरिक शक्तियों के क्षय होने पर भी उनकी जबान कैंची की तरह चला करती है। वे स्वयं तो अशक्त होने के कारण कुछ कर नहीं पाते और बैठे-बैठे दूसरों के कामों और व्यहारों पर टीका-टिप्पणी और रोक-टोक किया करते हैं। जब जो मुंह में आता है, कह देते हैं और इस प्रकार सभी को अप्रसन्न कर लेते हैं। क्रोध मनुष्य को अन्धा और बहरा बना देता है यह समझाने-समझाने के लिए बहुत-से उदाहरणों की देने की आवश्यकता नहीं है। हम सभी का यह सामान्य अनुभव है कि क्रोध में मनुष्य राक्षस और उन्मत्त एक साथ बन जाता है। तोड़-फोड़, मार-पीट, अपना ही सिर फोड़ लेना और अपने हित-चिन्तकों तक की बात न सुनना क्रोध की प्रतिक्रियाएं हैं। आगा-पीछा और अच्छा-बुरा सोचे-समझे, मानव से दानव बना देने वाले इस दुष्ट भाव का हमें मन-वचन और कर्म से सर्वथा परित्याग करना चाहिये।

आत्म-संयम से हमारा अभिप्राय समस्त मनोवेगों के संयम से है। क्रोध भी इनमें से एक है। गीता ने काम, क्रोध और लोभ इन तीनों को नरक का द्वार बताया है और इन्हें छोड़ देने की सलाह दी है। ये तीन तो दुष्ट मनोभावों की सेना के सेनापति हैं। और भी कितने ही दुष्ट मनो-

भाव हैं और उनमें हर छोटा-बड़ा अकेला ही मनुष्य-जीवन को नष्ट करने में समर्थ है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, घृणा, प्रतिकार आदि कितने ही नाम गिनाए जा सकते हैं। कांटों से बचने के लिए न तो हम दुनियाभर के कांटों को साफ करते हैं और न ही सब जगह उन्हें किसी चीज से ढकने का प्रयत्न करते हैं। हम तो केवल अपने पांवों में जूता पहन लेते हैं। यही ठीक तरीका है कांटों से बचने का। हमें सबसे प्रथम अपने को ही सुधारना होता है। जो लोग आत्म-सुधार किए बिना दूसरों के सुधार का झंडा उठाए फिरते हैं, वे अपने कार्य में असफल तो होते ही हैं, हंसी का पात्र भी बनते हैं। ऐसा सोचने की भूल तो सम्भवतः आप नहीं करेंगे कि आत्म-संयम साधारण नागरिकों का नहीं, किन्हीं सत्पुरुषों —साधु-महात्माओं का अपेक्षित गुण है। क्या कांटों से बचने के लिए सभी लोग जूता नहीं पहनते हैं। क्या हम कभी यह कहते हैं कि जूता तो जंगलों में घूमने वालों को ही पहनना चाहिये। नहीं कहते, ऐसा नहीं करते। आप अध्यापक हों या चिकित्सक, वकील हों या सरकारी कर्मचारी, दुकानदार हों या बड़े व्यापारी—जीवन के किसी भी क्षेत्र में आत्म-संयम अपरिहार्य आवश्यकता है। सुखी और सफल जीवन जीने वालों के लिए यह अमोघ कवच है। यही वह गुण है जो पशु को मनुष्य बनाता है। पशु इसीलिए तो पशु है कि निर्बाध इन्द्रियों के विषयों के अधीन होता है। वह अपनी सहज प्रवृत्तियों से परिचालित होता है। मनोवेग ही उस की समस्त क्रियाओं का निर्धारण और संचालन करते हैं। उसका उन पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं होता। मानव की गरिमा तो सहज वृत्तियों के निग्रह और संयम से ही सिद्ध होती है।

कभी-कभी लोग दुष्ट विकारों से आक्रान्त होने के बाद पश्चात्ताप करते देखे जाते हैं। वे लज्जित भी अनुभव करते हैं। पर दोबारा वैसा ही अवसर उपस्थित होने पर, आत्म-संयम के अभाव में वे फिर निन्दित आचरण करते देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे स्वस्थ होने पर इन विकारों के कारण होने वाली मानसिक और शारीरिक क्षति का अनुमान नहीं लगा पाते। जो स्थूल रूप में घटित होता है, वे केवल उसी को देखते हैं। भीतर-ही भीतर जो विखण्डन होता है—मन में जो स्थायी

गाठे पड़ती हैं, उनकी दूरगामी जो प्रतिक्रिया होती है, वह उनकी पकड़ में नहीं आती। इनके कारण रक्त में विष घुलता है, पाचन यंत्र और मस्तिष्क में जो विकार उत्पन्न होते हैं, स्नायुओं में जो तनाव बढ़ता है, उसे हम कहां आंकते हैं। यह बड़ा भ्रामक विचार है कि रोग किसी शारीरिक अव्यवस्था के कारण होते हैं या रोगों का उपचार केवल औषधियों के सेवन से हो सकता है। रोग के कारणों का निदान करने वाले आज भली प्रकार जानते हैं, कि अनेक शारीरिक रोग भी मानसिक कारणों से उत्पन्न होते हैं और उन कारणों को दूर किये बिना उनकी चिकित्सा नहीं की जा सकती। सभी जानते हैं कि कुछ लोग स्वास्थ्यकर वातावरण में रहते हुए और पौष्टिक भोजन करते हुए भी स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट नहीं होते। तो मानना होगा कि भीतर-ही-भीतर ऐसा कुछ जरूर है जो उनकी शक्ति का नाश करता रहता है और उन्हें स्वस्थ-प्रसन्न नहीं होने देता। उनकी दुर्बलता और बुरे स्वास्थ्य का कारण उनके मानसिक दुष्ट विकार ही हुआ करते हैं।

सच्ची शिक्षा और विद्या वही है जो हमें अपने पर काबू पाना सिखाती है। यदि सीख-पढ़कर अपने पर काबू पाना नहीं सीखा तो फिर शिक्षित और अशिक्षित में क्या भेद रह गया। यही वह अन्तर है जो पशु को पशु, और मनुष्य को मनुष्य बनाता है। जीती हुई इन्द्रियां जहां मनुष्य की दास होती हैं, वहां इन्द्रियों के वशीभूत व्यक्ति स्वयं उनका दास होता है। एक विद्वान् का कथन है कि सबसे बड़ी और सबसे बुरी गुलामी तो अपनी इन्द्रियों की ही है। बलवान् इन्द्रियां मनुष्य को अपना दास बनाकर उसी तरह नचाती हैं जैसे मदारी बन्दर को। इसी को आत्म-संयम का अभाव कहते हैं।

परमात्मा ने प्रत्येक व्यक्ति में अपनी शक्ति का वह अंश स्थापित कर रखा है जो मनुष्य को सदा स्वतंत्र रहने के लिए सामर्थ्य प्रदान करता है। पर हममें से अनेक शक्ति के उस अंश को ही भुला देते हैं। उस शक्ति से परिचित होकर उसे जाग्रत रखा जाए और उसका सदुपयोग किया जाए तो कठिन से कठिन कार्यों को सम्पन्न किया जा सकता है और दुष्ट मनोविकारों को दूर करके समस्त इन्द्रियों पर काबू पाया जा

सकता है। जब किसी व्यक्ति को एक बार उस शक्ति का ज्ञान हो जाता है, और वह उसे जगाकर उससे काम लेना सीख जाता है तो फिर आत्म-संयम की साधना पूरी हो जाती है। उसका मन न तो क्षुब्ध होता और न बेकाबू। वह सदा शान्त और सन्तुष्ट रहता है। दुःख-सुख भी उसके मन में किसी प्रकार की तरंगें नहीं उठाते।

वास्तविकता यह है कि हमारे भीतर दैवी और राक्षसी दोनों प्रकार की शक्तियां रहती हैं। अब इनमें से जिसके अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न होंगी वह शक्तिशाली हो जाएगी और दूसरी निर्बल। इसलिए प्रयत्न-पूर्वक दैवी संपद् का विकास करना चाहिये और राक्षसी का ह्रास। दैवी संपद् के शक्तिशाली होते जाने से राक्षसी संपद् क्षीण होती जाएगी। हमें जिस गुण को ग्रहण करना अथवा बढ़ाना हो, उसका स्मरण रखना चाहिये और उसके विपरीत दुर्गुण को भूलकर भी मन किंवा हृदय में स्थान नहीं देना चाहिये। त्याज्य दुर्गुण के बारे में चर्चा करना, उससे भयभीत होना भी हानिकारक है। हमें तो उस स्थान को सद्गुण से घेर लेना चाहिये, ताकि यह दुर्गुण अपने आप स्थानाभाव से बाहर निकल जाए।

झूठा अभिमान, दिखावे की प्रवृत्ति, स्वार्थ-परता—ये कुछ ऐसी बातें हैं जो आदमी को असहनशील, चिड़चिड़ा और ईर्ष्यालु बना देती हैं। इसके विपरीत निरभिमानता, सादगी और परोपकार के गुण दूसरे अनेक गुणों के विकास में सहायक होते हैं और मनुष्य को धीर-गम्भीर और शान्त रखते हैं। पतला टीन का पतरा जरा-सी गर्मी पाकर भी तप जाता है। इसके विपरीत फौलाद का वह पुर्जा जिसपर पाणे दी गई है, बड़े घर्षण से भी गर्म नहीं होता। दबाव पड़ने पर पिचकता भी नहीं। क्रोध करना निश्चित रूप से पागलपन है। अन्तर केवल यह है कि यह पागलपन कुछ देर के लिए होता है। छोटे बच्चे भी एकाध बार हाथ जलाकर अनुभव द्वारा यह सीख लेते हैं कि आग को नहीं छूना चाहिये। पर आश्चर्य की बात है कि बड़े-बड़े समझदार भी, अपने अनुभव से लाभ न उठाकर यह नहीं सीखते कि स्वभाव की दुष्टता से कितनी अधिक हानियां होती हैं।

विचारशील व्यक्ति जो अपने मन को वश में रखना जानता है वह

अपने मानसिक शत्रुओं से बचने के उपायों को भली भांति जानता है। वह दुष्ट मनोविकारों का आक्रमण होने पर बाहरी रूप से उनके अनुरूप आचरण नहीं करता और दंतहीन सर्प की तरह उन्हें व्यर्थ बना देता है। वह उनके विपरीत भाव को प्रश्रय देकर इनकी शक्ति को क्षीण करता है। जैसे आग बुझाने के लिए कोई मिट्टी का तेल नहीं छिड़कता अपितु पानी फेंकता है, ठीक इसी प्रकार का आचरण सत्पुरुष का होता है। जब कोई व्यक्ति क्रोधित होता है तो दूसरे लोग भी क्रोधित हो उठते हैं। उसके क्रोध को शान्त करने के बजाए वे आग में घी की आहुति के समान बढ़ाने का काम करते हैं। यह तो आग से आग बुझाने जैसी बात है।

जब हम किसी को कीचड़ या दलदल में फंसा देखते हैं तो उसे बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं, न कि स्वयं भी जाकर कीचड़ में फंस जाते हैं। परन्तु किसी क्रुद्ध के साथ व्यवहार करते समय हम स्वयं क्रुद्ध हो जाते हैं। यही वह अवसर होता है जब हमें शान्त रहने की सर्वाधिक आवश्यकता होती है।

यदि कोई विकट अवसर उपस्थित होने पर क्रोधी व्यक्ति को समझा-बुझाकर शान्त कर दिया जाए तो क्रोध दूर होने पर वह व्यक्ति आपके प्रति कृतज्ञ भाव ही जताएगा।

आचार-व्यवहार में यह आवश्यक है कि हमारा अपनी वृत्तियों पर पूरा नियंत्रण रहे। तभी हम अपना और दूसरों का कुछ भला कर सकते हैं। बार-बार उत्तेजना दिलाने पर जब दूसरे पक्ष का व्यक्ति शान्त बना रहता है तो पहला व्यक्ति लज्जित हुए बिना और उसकी महानता को स्वीकार किये बिना नहीं रहता। अपने मन को वश में रखने का इस प्रकार दोहरा प्रभाव पड़ता है।

सारांश यह कि हमें अपने सारे प्रयत्न अपने को संयमित रखने में लगाने चाहिये। इससे हमारे चरित्र का तो विकास होगा ही, दूसरों पर भी लाभकारी प्रभाव पड़ेगा।

१७

प्रसन्नता

मन और शरीर में गहरा और अविच्छिन्न सम्बन्ध है। यदि मन प्रसन्न है तो शरीर स्वस्थ और स्वतंत्र अनुभव करता है; प्रसन्नता से बहुत से पाप पलायन कर जाते हैं।

—गेटे

यदि सब लोगों को यह बात मालूम हो जाए कि सदा प्रसन्न रहने का हमारे स्वास्थ्य पर कितना लाभकारी प्रभाव पड़ता है तो वैद्यों और डाक्टरों को कोई दूसरा काम खोजना पड़ेगा। 'हंसना' प्रकृति की दी हुई, बिना मोल की सबसे महत्वपूर्ण पुष्टिकारक वस्तु है। इससे बल और उत्साह में वृद्धि होती है। मन पर जमी विषाद की धूल झड़ जाती है। हास्य रक्त को शुद्ध करके नए जीवन का संचार करता है और इससे आरोग्य लाभ होता है।

अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य में एक स्त्री थी जो बहुत दिनों तक खिन्न और चिन्तित रहने के कारण नींद न आने के रोग से ग्रस्त थी। जीवन उसके लिए भार बन गया था। किसी ने उसे बताया कि तुम कम से कम दिन में तीन बार बिना बात के खिलखिलाकर हंसा करो। तद्नुसार उसने प्रति दिन कई बार हंसना शुरू कर दिया। वह अकेली भी खिलखिलाकर हंस पड़ती। केवल इसी उपाय से न केवल उसे ठीक से नींद आने लगी अपितु उसके स्वास्थ्य में भी वांछित सुधार हो गया।

जीवन-पथ पर चलते हुए प्रायः हमें ऊबड़-खाबड़ स्थानों से गुजरना

पड़ता है जिनसे ठोकरें, धक्के और झटके लगते हैं। जो लोग हंसमुख नहीं होते, उन ठोकरों से बहुत कष्ट पाते हैं। परन्तु हंसोड़ लोगों के लिए हास्य ऐसे अवसर पर पत्थरों को मुलायम गद्दों में बदल देता है। इससे जीवन-यात्रा के अनेक कष्टपूर्ण प्रसंग सुख में बदल जाते हैं। जब हम किसी अप्रिय घटना आदि के कारण अस्वाभाविक परिस्थिति में पहुंच जाते हैं, तब हास्य और प्रसन्न-चित्तता तुरंत अपनी स्वाभाविक स्थिति में ले आते हैं। जीवन-पथ पर चलते समय जो क्षत लगते हैं, उन सब के लिए हास्य बढ़िया मरहम का काम करता है। हास्य एक प्रकार का ऐसा व्यायाम है, जिससे हमारी समस्त धमनियों में ताजे रक्त का संचार होता है। स्पार्टा के भोजनालय में वहां के सुप्रसिद्ध नेता लाइकरगस ने हास्य देवता की एक प्रतिमा स्थापित कर रखी थी। उसका कहना था कि हास्य हमारी पाचन-शक्ति को बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है।

आजकल का सभ्य जीवन और परिस्थितियां ऐसी हो गई हैं कि लोगों को हंसने का अवसर कम मिलता है और जब कभी अवसर मिलता भी है, खिलखिलाकर हंसने में सभ्यता आड़े आती है। बहुत जोर से हंसना असभ्याचरण माना जाता है। दूसरे भोजन-वस्त्र की समस्या से चिन्तित रहने के कारण हंसने का अवसर भी नहीं मिलता है। युवावस्था में प्रवेश करने तक, जब हमारे ऊपर उत्तरदायित्व आ पड़ते हैं, हंसने की आवश्यकता भी बढ़ जाती है पर तभी हमारा हंसना बन्द हो जाता है। किशोरावस्था में भी यद्यपि पढ़ाई-लिखाई की काफी चिन्ता होती है, फिर भी हंसने-खेलने के लिए समय मिल ही जाता है। एक तरह से लोग हंसना भूलते जा रहे हैं। यदि कभी हंसने का कोई अवसर आता है तो लोग जरा-सा मुस्कराकर रह जाते हैं। शरीर की प्रत्येक मांस-पेशी को हिला देने वाला अट्टहास शहरों में कम ही देखने-सुनने में आता है। लोग यह जानते ही नहीं कि चिन्ता के कारण मन-हृदय में जो गांठें पड़ जाती हैं, मस्तिष्क में उलझन के कारण जो तनाव होता है, वह सब ठीक हो जाता है। इससे शिथिलता भी दूर होती है। हंसते-हंसते जीना—यही सच्चा जीवन-मंत्र है।

जो लोग सभ्य कहलाने के चक्कर में या चिन्ता अथवा व्यस्तता

के कारण जोर से हंसना भूल गए हों वे फिर से हंसना सीखें। उनकी शारीरिक और मानसिक क्लान्ति दूर होगी, मन-मस्तिष्क में ताजगी आएगी, रक्त-प्रवाह ठीक रहेगा और ताजगी का अनुभव होगा।

लिंकन अपनी मेज पर हास्य-विनोद की एक न एक पुस्तक अवश्य रखे रहता था। जब कभी वह काम से थक जाता तब वह उस पुस्तक को उठाकर पढ़ना शुरू कर देता। इससे कुछ ही देर में फिर ताजा हो जाता और काम आरम्भ कर देता।

हास्य शरीर और मन दोनों के लिए बड़ा लाभदायक है। यह मनुष्य जाति को ईश्वर की महत्वपूर्ण देन है। हंसी के ठहाकों से हंसने वाले को तो लाभ होता ही है, सुनने वाले भी लाभान्वित होते हैं। डा० सैंडर्सन का मत है सदा प्रसन्न रहने से शारीरिक बल में स्थायी वृद्धि होती है। इससे आँखों में चमक, चेहरे पर कान्ति और मन में स्फूर्ति का संचार होता है। रोग-प्रतिरोधक शक्ति भी इससे बढ़ती है। हंसना, प्रसन्न रहना हजार दवाओं की एक दवा है। मित्रों की किसी हास्य गोष्ठी या हंसी-मजाक वाला खेल-तमाशा देखने के बाद प्रत्येक व्यक्ति हल्का-फुल्का और उत्साह से भरा दीखता है। उसके चेहरे पर प्रफुल्लता के दर्शन किये जा सकते हैं। इस बात की परीक्षा आप सहज में ही कर सकते हैं। घर में बच्चों के साथ-खेलना, उन्हें हंसाना और स्वयं हंसना, बच्चों तथा बड़ों दोनों के लिए लाभदायक होता है। रात को गहरी नींद सोने से जो लाभ होते हैं, उससे मिलते-जुलते लाभ ही उन्मुक्त हंसी से भी होते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी दिनचर्या में हंसी-मजाक को भी उचित स्थान और महत्व देना चाहिये। माना कि हमारे ऊपर गंभीर उत्तर-दायित्व हैं, हमें जीवन-निर्वाह की तथा अन्य चिन्ताएं हैं पर इसका हल यह तो नहीं है कि हम रोनी-सी सूरत बनाए रहें और अपने विषाद की छाया दूसरों पर डालते रहें। प्रसन्न-चित्त रहने से हम अपनी समस्याओं के प्रति अधिक स्वस्थ ढंग से सोच सकेंगे और इस प्रकार उनके हल का काम सुगम हो जाएगा। इसीलिए कहते हैं 'मुस्कान सुख की खान'। संसार में दुःख-विषाद वैसे ही कम नहीं हैं। हम यथासंभव उसे कम करने का प्रयत्न करें बढ़ाने का नहीं। एक हंसोड़ व्यक्ति सारी मण्डली में हास्य

की लहर पैदा कर देता है और चाहे कुछ समय के लिए ही सही, लोगों के चेहरों पर से दुःख और विषाद की छाया को हटा कर प्रसन्नता की चमक पैदा करने में समर्थ होता है। हास्य वृत्ति का प्रभाव छूत की तरह फैलता है। आप पहल कीजिए और फिर देखिए कि उदास चेहरे भी कैसे खिल पड़ते हैं। प्रसन्नता की वृत्ति में एक और बड़ा गुण है। यह हमारे नैतिक आचरण पर भी बड़ा लाभकारी प्रभाव डालती है। प्रसन्न-मुख व्यक्ति अनेक छोटी-मोटी कटुताओं को अनायास सह लेता है। अपनी मन्द-मधुर हंसी से कटुता को भी मधुरता में बदल देता है। उससे पाला पड़ने पर कटुता अपना विषैला स्वभाव तक छोड़ बैठती है। फ्रांस के एक चिकित्सक का मत है कि बच्चों को छोटी अवस्था से ही सदा प्रसन्न रहने की आदत डालनी चाहिये। बच्चों को खिलखिलाकर हंसने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करना चाहिये। ठहका मारकर हंसने से छाती फैलती है और रक्त-संचार में गति आती है। मन्द-मुस्कान सदा चेहरे पर बनी रहे, यह तो आवश्यक है ही, बीच-बीच में सारा मकान गूंज उठे, ऐसी हंसी भी जरूरी है।

जहां हम अपने काम-काज से सम्बन्धित तथा प्रतिदिन के व्यवहार के लिए उपयोगी ज्ञान का अर्जन करते हैं, वहाँ हमें स्वास्थ्य-सुधार और व्यक्तित्व-विकास की ओर भी यथेष्ट ध्यान देना चाहिये और हास्य इसके लिए अचूक उपाय है।

बहुत-से माता-पिता बच्चों को जोर से हंसने के लिए रोका करते हैं। यही नहीं, इस के लिए डांट-डपट भी करते हैं। यह अच्छी बात नहीं है। बालक स्वभावतः प्रसन्न रहना और हंसना चाहते हैं। इस कार्य में माता-पिता को उनका सहयोगी बनना चाहिये। हंसने पर पाबन्दी लगाने का अर्थ है, शारीरिक मानसिक और नैतिक विकास पर पाबन्दी लगाना। बालकों को छोटी अवस्था में बड़े-बूढ़ों जैसा आचरण करने के लिए बाध्य करना बड़ा हानिकारक है। इससे उनके जीवन का आनन्द-रस सूख जाता है और वे अपने स्वाभाविक विकास से वंचित रह जाते हैं।

बालक स्वभाव से प्रसन्न रहना और हंसना चाहते हैं, और यदि घर में उनकी यह इच्छा पूरी नहीं होती तो फिर वे घर से बाहर—इस की पूर्ति करने लिए विवश होते हैं। वे अवसर मिलते ही घर से बाहर भागते

हैं और मित्रमण्डली में इस कमी को पूरा करते हैं। बालकों में ही नहीं, यह प्रवृत्ति बड़ों में भी देखने को मिलती है। वे भी घर के कुढ़न भरे वातावरण से भागकर, मनोरंजन के लिए कभी सिनेमा तो कभी यार-दोस्तों के पास चक्कर काटते हैं। बालकों और बड़ों का घर में न टिकना इस बात का प्रमाण है कि घर का वातावरण उनके लिए आनन्ददायक नहीं है। जिसे जहां प्रसन्नता मिलेगी, वह वहां जाएगा। और अगर घर में ही मिल जाए तो फिर बाहर जाने की किसी को क्या जरूरत। इसलिए घर में ही आनन्द और प्रसन्नता का वातावरण बनाना चाहिये।

समूचे परिवार के लिए हंसी-खुशी से बढ़कर अच्छी और सस्ती और कोई दवा हो ही नहीं सकती। यह रोग-प्रतिरोधक और बलवर्द्धक दोनों गुणों से युक्त है और इच्छामात्र से सर्वत्र सुलभ भी है। इसका नित्य प्रयोग करते रहने से चिकित्सकों के बिलों से बचा जा सकता है।

यह बात विशेष ध्यान देने की है कि इस सम्बन्ध में, बालकों के प्रति विशेष ध्यान दिया जाए। उनके समुचित विकास और उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। यही वह समय है जब उनमें सदा प्रसन्न रहने की आदत डाली जा सकती है।

जैसे नये पौधे के लिए अच्छी खाद और पर्याप्त पानी की आवश्यकता होती है, वैसे ही बालकों के लिए पौष्टिक आहार, अच्छे वातावरण के साथ-साथ प्रसन्न रहने की आवश्यकता है। इसके अभाव में तरह-तरह की शारीरिक और मानसिक विकृतियां उत्पन्न हो सकती हैं और बड़ी उमर में इनके प्रभाव से मुक्त होना कठिन किंवा असंभव है। यह अवस्था भावी जीवन की नींव होती है। यदि नींव ही त्रुटिपूर्ण हुई तो जीवन सफल और उन्नत कैसे होगा। रंग-बिरंगे खिले हुए फूल जिस प्रकार अपनी सुवास और मनोहारी छटा से अपने आस-पास के वातावरण को सुन्दर बनाते हैं, इसी प्रकार हंसमुख, मधुर-भाषी, सद्गुणी व्यक्ति भी अपने चारों ओर आनन्द की सृष्टि करते हैं। वे इससे स्वयं तो लाभान्वित होते ही हैं, उनके सम्पर्क में आने वाले भी इस लाभ से वंचित नहीं रहते।

१८

दुःख को भूल जाइये

गतं न शोचामि
बीती ताहि बिसारि दे।
एक समय में एक दुःख से अधिक कभी सहन न करो। कुछ लोग हैं जो तीन प्रकार के दुःख एक साथ सहन करते हैं : वे सब दुख जो आज तक उन पर पड़े, वे सब जो इस समय पड़ रहे हैं, और वे सब जिन के पड़ने की वे आस लगाए बैठे हैं।

—अनाम

जीवन और जगत् में बहुत-सी ऐसी घटनाएं घटित होती हैं, जो अरुचिकर, अप्रिय और दुःखदायक होती हैं। उनके घटित होने के वर्षों बाद तक उनके स्मरण मात्र से दिल दुःखी होता रहता है। मन में दुःख और क्षोभ की तरंगें उठने लगती हैं। यदि लोग ऐसी दुःखद स्मृतियों को सदा के लिए भुला सकते होते तो संसार का बहुत-सा दुःख दूर हो जाता। यदि हम अपने मस्तिष्क में, केवल सुखद-सुन्दर स्मृतियां ही रख पाते जिनसे हमें भविष्य के लिए उत्साह और बल मिलता तो जीवन की उपयोगिता और क्षमता कई गुणा बढ़ जाती।

कुछ लोगों का स्वभाव ऐसा बन जाता है कि वे सदा अप्रिय बातों को ही याद करते रहते हैं। वे जब किसी से मिलते हैं, किसी न किसी बात का रोना रोने लगते हैं। भूत, वर्तमान और भविष्यत् के दुखों से वे स्वयँ तो दुखी रहते हैं, दूसरों को भी दुःखी करते फिरते हैं। चिन्तित

और भयभीत रहना तथा इसकी छूत दूसरों को लगाते फिरना ही जैसे उनका नित्य का काम हो। निश्चय ही उनके जीवन में अनेक सुखद प्रसंग भी आए होंगे पर वे कभी उनकी चर्चा करते नहीं मिलेंगे। शायद दुःखद प्रसंगों का ही सदा चिन्तन-स्मरण करते रहने से वे उन्हें भूल गए होंगे। जीवन का शुक्ल पक्ष उनके हृदय के अन्धकार में छिप गया है और कृष्ण पक्ष उनकी स्मृति के आलोक में सदा प्रकाशमान् रहता है।

कुछ लोग ठीक इसके विपरीत आचरण करते हुए भी आपको मिलेंगे। वे सदा सुखकर और प्रिय घटनाओं की ही चर्चा करते हैं। वे अपने आनन्दपूर्ण जीवन-प्रसंगों का ऐसा रोचक वर्णन करते हैं कि सुनने वालों में जीवन के प्रति आशा और आकांक्षा जाग उठे। सुख और दुख तो जीवन में आते-जाते ही रहते हैं। उनके जीवन में निश्चित ही आए होंगे। परन्तु अपनी शुभ वृत्ति के कारण वे दुःख को भूलकर सुख का ही विस्तार करते हैं। सम्भवतः वे जानते हैं कि संसार में दुःख-दैन्य आगे ही बहुत है। और फिर कुछ लोग अपने अज्ञान के कारण उसे और भी बढ़ा लेते हैं। समझदार लोग स्वयं का आनन्द तो दूसरों से कहकर उन्हें आनन्दित करते हैं पर दुःख को दबाकर ही रखते हैं। आप जानते हैं कि हम उन्हीं बातों को बार-बार कहते हैं जिनका प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं। कौन बुद्धिमान् व्यक्ति दुःख का प्रसार करना चाहेगा। ये भले लोग दुर्घटना, बीमारी, मौत या किसी विषाद उत्पन्न करने वाले प्रसंग की चर्चा ही नहीं करेंगे जैसे इन बातों से उनका कभी वास्ता ही न पड़ा हो। उनकी बातों से लगेगा कि जैसे संसार में उनका कोई भी शत्रु नहीं है। सभी मित्र हैं। ईश्वर की सृष्टि यह संसार नरक नहीं स्वर्ग है। वे जीवन और जगत् से प्रेम करते हैं। इस जगत को रहने योग्य और जीवन को जीने योग्य बनाने में अपना सहयोग देते हैं। इसका कारण यह होता है कि जिनके हृदय में सदा उदार, प्रेमपूर्ण और आनन्दमय विचारों की स्थिति रहती है, वे ही दूसरों से अपने बारे में अच्छी और प्रिय बातें कहा करते हैं। और जो लोग अपने मन में संकीर्ण, घृणापूर्ण विचार रखते है, वे इन्हीं कारणों से स्वयं दुःखी रहते हैं और दूसरों को दुःखपूर्ण बातें सुनाते फिरते हैं।

कुछ लोगों के मस्तिष्क में कूड़ा-कचरा भरा रहता है। कूड़े-कचरे के

इस ढेर में उनके पास भी बहुमूल्य वस्तुएं दबी पड़ी रहती हैं। वे जब भी कुछ निकालने के लिए हाथ डालते हैं, कूड़ा-कचरा हाथ लगता है। इस कूड़े-कचरे से इन्हें मोह भी हो जाता है और वे कभी इसे बाहर निकाल फेंकने की बात नहीं सोच पाते। वे सदा इसी दुविधा में फंसे रहते हैं कि न मालूम इस कूड़े-कचरे का कभी उपयोग हो जाए। पर उनकी आशा के विपरीत यह कूड़ा-कचरा कभी काम तो आता नहीं, उल्टे स्थान घेरे रहता और गन्दगी फैलाने का कारण बनता है। साथ ही काम की चीजें भी उसमें दबी रहती हैं और समय पड़ने पर हाथ नहीं आतीं। इसलिए घर के और दिमाग के कूड़े-कचरे को सदा ही फेंकते रहना चाहिये। शुद्धता, स्वच्छता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

कभी-कभी हमें ऐसे लोगों से भी वास्ता पड़ता है जिनका मस्तिष्क किराए की गाड़ी की तरह होता है। किराए की गाड़ी पर कभी तो आपको कोई बड़ा विद्वान् बैठा मिलेगा और कभी कोई चोर या जुआरी। गाड़ी वाले को सवारी के चरित्र से कोई वास्ता नहीं। वे कभी यह नहीं सोचते कि अमुक विचार ग्रहण करने योग्य हैं और अमुक त्याज्य। जब जैसा मिल गया, उसी को ग्रहण कर लिया। वे चुनाव नहीं करते। ऐसा मस्तिष्क जिसकी संग्रह और त्याग की क्रिया ज्ञान-विवेक पूर्वक नहीं होती, कभी शुद्ध नहीं कहा जाएगा। विष मिला हुआ अमृत भी त्याज्य होता है।

चरित्र की शुद्धता का एक स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि मन व्यवस्थित और स्थिर रहता है। कोई दुष्ट भाव उसमें सहज ही प्रवेश नहीं पा सकता। चरित्र की श्रेष्ठता शुभ संकल्प और तदनुरूप शुभ कार्य से निर्धारित होती है। जब तक मस्तिष्क शुद्ध और स्वच्छ नहीं रहता, तब तक शुभ संकल्प अथवा शुभ विचार का प्रादुर्भाव संभव नहीं होता। इसलिए प्रसन्न रहना आवश्यक है। प्रसन्न शब्द को थोड़ा और समझ लेना चाहिये। प्रसन्न का अर्थ खुशी में उछलना-कूदना नहीं है। प्रसन्न-का अर्थ है क्षोभ-रहित और निर्मल। तरंगायित नहीं। एकदम पारदर्शी जिसमें तल की प्रत्येक वस्तु स्पष्ट दिखाई दे। गीता में कहा है : 'प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।' प्रसन्न चित्त वाले की बुद्धि स्थिर हो जाती है। प्रसन्न शब्द का दूसरा पर्यायवाची शब्द है, 'प्रसाद'।

गीता कहती है : 'प्रसादे सर्व दुःखानां हानिरस्योपजायते ।' प्रसाद अर्थात् प्रसन्नता प्राप्त होने पर समस्त दुःखों का नाश हो जाता है । यह तथ्य विज्ञान द्वारा सिद्ध है कि यदि दुःख की संवेदना मस्तिष्क तक न पहुंचे तो दुःख का अनुभव नहीं होता । दुःख संवेदना को मस्तिष्क तक पहुंचने से रोक कर ही बड़े-बड़े आपरेशन किए जाते हैं और रोगी को कष्ट की अनुभूति नहीं होती । यह सब औषधों द्वारा होता है । सभी तरह के दुःख, वे चाहे शारीरिक हों या मानसिक मन के परिणाम हैं । मन की परिभाषा करते हुए कहा गया है : "सुख-दुःखाद्युपलब्धि साधनमिन्द्रियं मनः ।" सुख-दुःख की अनुभूति कराने वाली इन्द्रिय का नाम मन है । अन्धेरी जगह पर ज्योति जगा देने से अन्धकार मिट जाता है, ऐसा कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक सत्य होगा कि अन्धकार को ही प्रकाश का रूप प्राप्त हो जाता है । अन्धकार की कोई वस्तु सत्ता नहीं है, जबकि प्रकाश की है । अन्धकार प्रकाश के अभाव का ही नाम है । ठीक इसी प्रकार जब अन्तःकरण प्रसन्न-निर्मल होता है तो दुःख ही सुख स्वरूप हो जाता है । जो-जो विचार और कार्य मन में दुःख-चिन्ता या क्षोभ उत्पन्न करते हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक मन से बाहर रखना चाहिये । स्थायी शान्ति प्राप्त करने का यही एकमात्र उपाय है । शरीर रूपी दीवारों के भीतर मन्दिर के गर्भगृह की तरह यह मन-मन्दिर है । देवता की निवास-भूमि । जिस प्रकार मन्दिर को हम सर्वतोभावेन शुद्ध-पवित्र रखते हैं, वैसे ही मन की पवित्रता भी आवश्यक है । यह देवता की वासभूमि है । अखण्ड दीप से प्रकाशित, पुष्प से सुशोभित और चन्दन-धूपादि से सुवासित । शुभ संकल्प और शुभ कर्म के द्वारा दैवी संपद् का विकास करना ही मनुष्य का परम पुरुषार्थ है । यही मानव का कर्त्तव्य और प्राप्तव्य है । सत्य, शिव और सुन्दर ही हमारा शुद्ध स्वरूप है । दूसरे दुष्ट भाव तो हमारे स्वयं ओढ़े हुए हैं । उन आवरणों को उतार फेंकना होगा ताकि वास्तविक स्वरूप से परिचय हो ।

सत्संकल्प का स्वच्छ झाड़ू लेकर मन-मन्दिर को भली प्रकार झाड़ दीजिए । इसमें जो भी कूड़ा-कचरा भरा हो, उसे बाहर निकालकर जला दीजिए और भविष्य में प्रतिदिन झाड़ू लगाते रहिये । इस बात का भी पूरा प्रयत्न करना होगा कि अस्वच्छ, अपवित्र वस्तु प्रवेश न पाए ।

अपनी हानियों, विफलताओं और दोषों के लिए कुढ़ने और चिन्तित रहने का परिणाम कभी शुभ नहीं होता। पुरानी घटनाओं से प्राप्त होने वाली शिक्षा को ग्रहण कर भविष्य में पुनरावृत्ति से बचना चाहिये।

पुरानी बातों का बदला चुकाने, किसी की उन्नति को देखकर उससे ईर्ष्या करने और किसी के प्रति द्वेषभाव रखने से मन की शान्ति नष्ट होती है, यही सभी का अनुभव है और दुष्ट भाव को मन में स्थान देने का सबसे बड़ा दण्ड यही है। इसके विपरीत क्षमा और सहिष्णुता परोन्नति में प्रसन्नता तथा मैत्री की भावना से मन को सात्विक शान्ति प्राप्त होती है। जूते में चुभे कांटे को जब तक निकाल न दिया जाए, वह चुभता ही रहता है, वैसे ही मन में बैठे हुए दुष्ट भाव को भी प्रयत्नपूर्वक निकाल शान्ति लाभ करना चाहिये। मनुष्य अपने आदर्श के अनुरूप ही बनता है। सज्जन पुरुष दूसरों को तुच्छ और घृणित नहीं समझते। उन्हें अपने को संस्कारित करने—अपने दोषों को दूर करके चरित्र का विकास करने के कार्य से ही अवकाश नहीं मिलता, इसलिए वे दूसरों की आलोचना में समय नष्ट नहीं करते। दूसरों के प्रति मन में दुर्भाव रखने से जो विष घुलता है, वह अत्यन्त हानिकारक होता है। उससे चरित्र की हानि होकर कार्यकारी शक्ति का विनाश होता है। इसलिए परापवाद को छोड़कर आत्मोन्नति के लिए यत्नशील रहना चाहिये। मूल और मुख्य बात को छोड़कर निरर्थक और तुच्छ बातों की ओर ध्यान देना आत्म-घात और मूर्खता है।

अपने हृदय को उदार और विशाल, सहनशील और दूसरों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रखना चाहिये। दूसरों की छोटी-छोटी भूलों, त्रुटियों और अपराधों की उपेक्षा करनी चाहिये। वैर से वैर शान्त नहीं होता। यह बुद्ध का वचन सत्य ही है। अधिकांश हमारे राग-द्वेष भ्रान्तियों पर आधारित होते हैं और दूसरों के बारे में निर्णय करते समय हम यह भूल जाते हैं कि यदि उनकी जगह हम होते तो क्या करते। "जो आचरण तुम्हें बुरे लगते हैं, तुम भी दूसरों के साथ व्यवहार करते समय उनका परित्याग करो" यह नीतिवाक्य हम भूल जाते हैं। लोग हमारे बारे में जो चाहें कहें और जो चाहें करें, हमें किञ्चिन्मात्र भी विचलित नहीं होना

चाहिये। अन्त तो गत्वा हमें मात्र अपनी आत्मा के प्रति ही उत्तरदायी होना चाहिये हमें आत्मग्लानि उत्पन्न करने वाले कार्यों से बचना चाहिये। सारी दुनिया को न कोई प्रसन्न कर सका न कर सकता है। इसलिए अपनी घड़ी को ठीक रखिए। यदि दूसरों की घड़ियों को देखकर अपनी घड़ी को ठीक करते रहे तो वह कभी भी ठीक समय नहीं देगी। लोग आपके बारे में क्या कहते हैं, यह बात महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि आप अपने बारे में क्या सोचते हैं। इसी से आपके भाग्य का निर्णय होने वाला है। अपने बारे में आपका ध्यान ही महत्त्व का दस्तावेज है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, "शत्रु पक्ष में जितने भी योद्धा हैं, मैंने पहले से ही इन्हें मार छोड़ा है। तुझे तो उनकी मौत का निमित्त मात्र बनना है।" इससे यह प्रमाणित होता है कि कर्म-वशात् हमें जो भी दुःख-कष्ट प्राप्त हुए हैं, दूसरे लोग उनका निमित्त मात्र हैं। हैं तो वे हमारे ही कर्मफल। परन्तु इसके साथ हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि जब दूसरों को कर्म विपाक से दुःख मिलने वाला हो तो हम उसकी प्राप्ति का निमित्त कारण न बनें। 'शठ के साथ शठत्व' यह बात तो पशुओं में भी देखी जाती है। फिर पशु और मानव में भेद कहां रह गया। मानव की महिमा तो इसी बात में है कि वह अपनी सहज प्रवृत्तियों से ऊपर उठे।

कभी-कभी ऐसा होता है कि विफलता, हानि अपमान या कष्ट के कारण कोई व्यक्ति खिन्न होकर अपना कर्त्तव्य छोड़ बैठता है। कोई उत्साह-सम्पन्न व्यक्ति आकर यदि उसे कर्त्तव्य-बोध कराता है तो वह अपने सारे कष्ट भूलकर फिर कर्त्तव्य पालन में तत्पर हो जाता है। थोड़ी ही देर में उसकी मानसिक स्थिति बदल जाती है। जिस दीपक में स्नेह और लौ होगी, उसी से दूसरा दीपक प्रकाशित हो सकेगा। निःस्वार्थ भाव से दी हुई सम्मति, प्रेरणा और सदाशयता का सदा शुभ प्रभाव पड़ता है। उच्च भावों के समक्ष नीच भाव कभी भी टिक नहीं पाते। प्रकाश के सामने अन्धकार की क्या गति और स्थिति हो सकती है। उच्च भावों की शक्ति से यदि लोग भली प्रकार परिचित हो जाएं तो दुःखी और

चिन्तित होने का कोई कारण ही न रह जाए।

जो-जो बातें हमें दुःखी और चिन्तित रखती हैं, यदि उन्हें हम भूल जाएं तो दुःख और चिन्ता का अपने आप क्षय हो जाएगा। हम उन स्मृतियों का कुरेद-कुरेद कर उभारते रहते हैं और वे हमारे तन-मन को सालती रहती हैं। गड़े मुर्दे उखाड़ने से सड़ांध ही निकलती है। विनोबा जी ने एक जगह सम्यक् स्मृति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि भूलने योग्य बातों को भूल जाना और स्मरण रखने योग्य बातों को स्मरण रखना ही सम्यग् स्मृति है। दुनिया भर की अंट-शंट स्मृतियों का बोझ बुद्धि पर लादे फिरना, न तो उपादेय है न बुद्धिमत्तापूर्ण। इसलिए सुखी रहने के लिए सुख का स्मरण-चिन्तन, और सुख का श्रवण-कीर्तन कीजिये।

१९

जैसा बोओगे वैसा कटोगे

तुलसी काया खेत है,
मनसा भए किसान।
पाप-पुन्य दोऊ बीज हैं,
बुवै सो लुनै निदान॥

—तुलसी

सभी लोग बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि खेत में जिस चीज का बीज बोया जाएगा, वही पैदा होगी। पर आश्चर्य की बात यह है कि सब कुछ जानते हुए भी नित्य प्रति के व्यवहार या मानसिक क्षेत्र में जब कुछ बोने का प्रश्न उठता है, और उसे काटने का समय आता है तो हम इस नियम को भूल जाते हैं।

यदि हम निरंतर अपने मस्तिष्क में दुःख और असन्तोष के बीज बोते रहें तो किस नियम से हम सुखी और सन्तुष्ट होने की आशा कर सकते हैं। यदि कोई किसान जौ बोकर गेहूं काटना चाहे तो उसे पागल ही कहा जाएगा। किन्तु हम भय और चिन्ता का बीज बोकर शान्ति की कामना करते हैं। और जब वह नहीं मिलती तो पछताते हैं। कैसा पागलपन है!

हमारे विचार बीज स्वरूप होते हैं। वे अंकुरित होकर कर्मों का रूप धारण करते हैं। अच्छे विचारों का अच्छा और बुरे विचारों का बुरा फल मिलता ही है।

यदि हम इस बात को भली प्रकार समझ लें कि अन्य सब प्रकार के नियमों की भान्ति आध्यात्मिक नियम भी वैज्ञानिक हैं तो अनेक समस्याएं सुलझ जाएं। कुछ लोगों को देखते ही हम समझ जाते हैं कि ये स्वार्थी, दुष्ट और नीच प्रकृति के हैं। ऐसा क्यों होता है ? इसलिए कि उनके विचारों की छाया उनके चेहरे पर दिखलाई देती है। इसी प्रकार कुछ लोगों की आकृति से शान्ति, सन्तोष, और पवित्रता झलकती है। हमारे विचारों का प्रभाव हमारे चेहरे पर पड़ता है। बुरे विचारों से बुरे कर्मों की उत्पत्ति होने से जब हम विपत्ति में फंस जाते हैं तो भाग्य, समाज, समय और परमेश्वर आदि को कोसने लगते हैं। जब व्यक्ति के स्वार्थपूर्ण व्यवहार के कारण उसके मित्र और हितैषी उससे दूर होने लगते हैं, तो उसका संकट में पड़ जाना स्वाभाविक है। लोग स्वयं स्वार्थी रहकर चाहते हैं कि दूसरे परोपकारी बने रहें। हम समाज से जब लेना ही लेना चाहते और बदले में कुछ देना नहीं चाहते तो हम असफल होते हैं। कारण यह है कि बिना किसी वस्तु का मूल्य चुकाए वह हमें मिल नहीं सकती। यह अटल नियम है। जिन वस्तुओं के बारे में हम समझते हैं कि ये हमें बिना मूल्य प्राप्त हो गई वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप से हमें उनका मूल्य चुकाना पड़ता है। उसका रूप चाहे कुछ भी हो। प्रकृति की दुकान में सब कुछ नकद बिकता है। हम जितना मूल्य देते हैं, उसके अनुपात में ही वस्तुएं हमें मिलती हैं। बिना मूल्य दिये या उचित मूल्य दिये बिना कोई वस्तु प्राप्त करने का प्रयास यहां सदा असफल रहेगा। आपको निराश होना पड़ेगा। इसके दुकानदार को दोष मत दीजिए। या तो वस्तु की कामना ही न कीजिए या पूरा मूल्य दीजिए। तीसरा कोई विकल्प नहीं है सिवा निराशा के।

हाथ की उंगलियों की तरह अब यह बात स्पष्ट दिखाई देने लगी है कि जैसे हमारे विचार और कार्य होंगे, वैसा ही फल हमें मिलेगा। जैसा बोएंगे वैसा ही काटना पड़ेगा। जिस प्रकार वैज्ञानिक तरीकों से कृषि करके किसान मनचाही भरपूर फसल उपजा रहे हैं, वैसे ही हम भी कर सकते हैं। इसके लिए उन्नत बीज के रूप में विचार, उर्वरा धरती के रूप में मानस क्षेत्र, कर्मरूपी जल से सिंचाई और सतत् जागरूकता के द्वारा

निराई-गुड़ाई करके हम सफल काम, सफल-मनोरथ हो सकते हैं।

हमारा शरीर मन की प्रतिच्छाया मात्र है। आज्ञाकारी दास की तरह यह मन का अनुसरण करता है। मन कीशक्ति अपरिमित है, इसकी गति निर्बाध है। यह कभी निष्क्रिय नहीं रहता। इसलिए मन को शिव-संकल्प की भावना से ओतप्रोत कर दिया जाए तो जैसे कल्पवृक्ष ही हाथ लग सकता है। कल्प वृक्ष, कामधेनु और पारस मणि यह मन ही तो है। गीता में कहा है 'मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है।' तो इस मन को वश में कीजिए। यह बहुत सरल काम तो नहीं है। मन बहुत चंचल है। बार-बार भटक जाता है। पर सतत् जागरूक रहकर, अभ्यास द्वारा इसे काबू किया जा सकता है। जैसे हाथी को वश में रखने के लिए अंकुश का प्रयोग किया जाता है, वैसे ही मन पर अंकुश लगाइए। वशीभूत मन अत्यन्त आज्ञाकारी दास और बेकाबू मन बड़े दुष्ट स्वामी के समान होता है।

आज भले ही हम अपनी अवस्था से सन्तुष्ट नहीं, पर वह है हमारे पिछले कल के कर्मों का ही परिणाम। और आज हम जो कुछ करेंगे, उसका फल भी कल भोगना पड़ेगा। यदि हम चाहते हैं कि हमारा कल अच्छा बने, तो आज को अच्छा बनाइये। समझ-बूझकर अच्छे बीज बोएंगे तो उनका आनन्दफल मिलेगा। फसल के साथ जो खर-पतवार उग आते हैं उन्हें साफ करते रहिये ताकि वे अपना प्रभाव फसल पर न डालें और धरती के रस को न चूस जाएं। कर्म फल और कर्म भोग का सिद्धान्त यही है। "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।" किए हुए शुभ अथवा अशुभ कर्मों को अवश्यमेव भोगना पड़ेगा।

❖ ❖ ❖